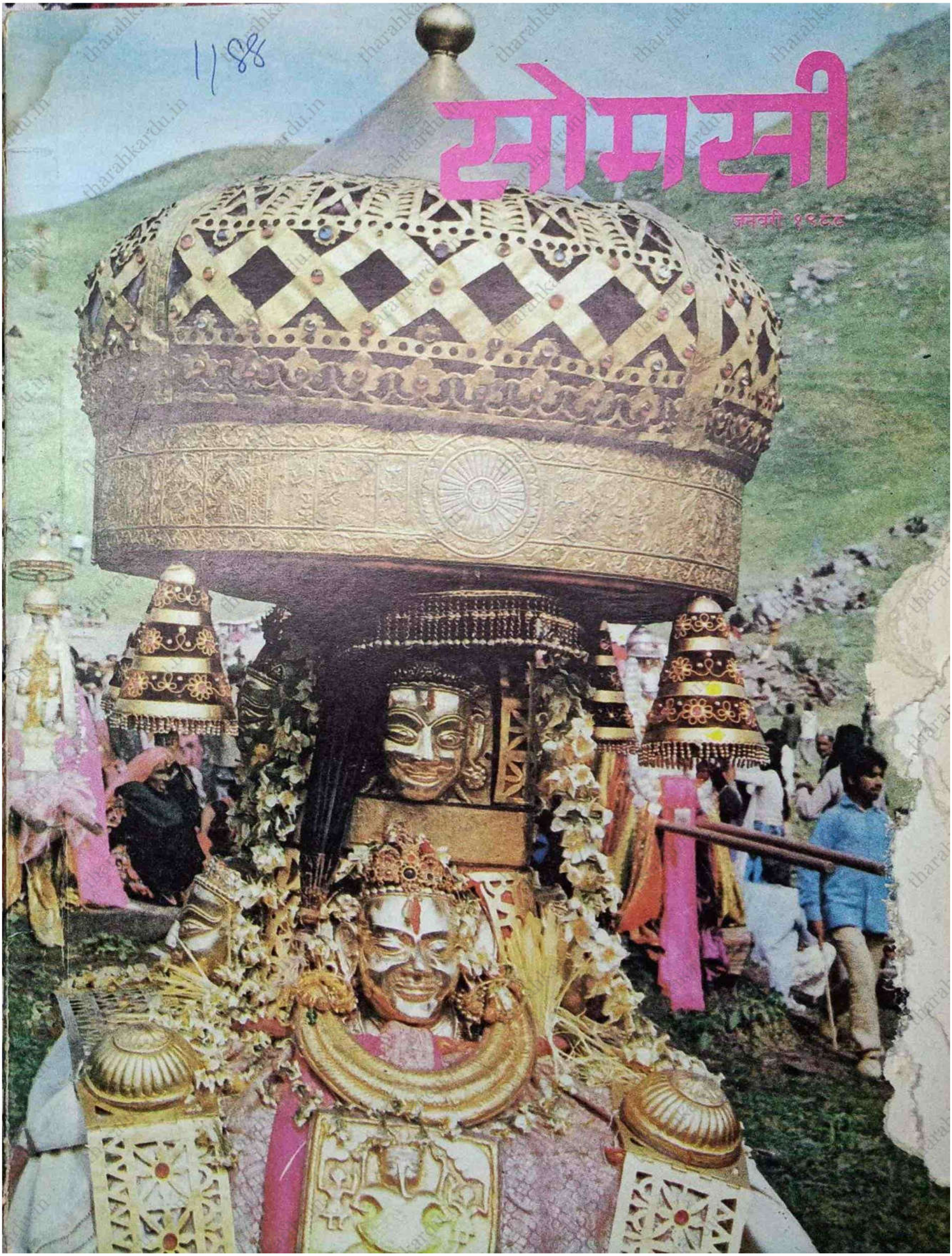
1/88
सोमरसी
जनवरी १९८८

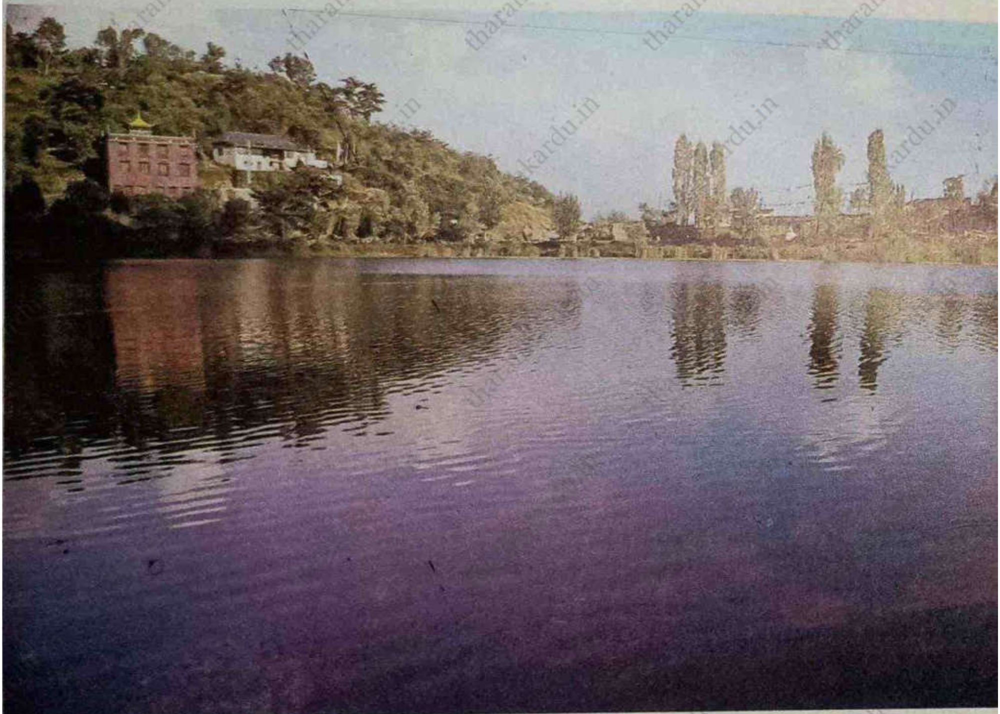

आवरण :
मण्डी क्षेत्र का एक ग्राम देवता
छाया : बीरबल शर्मा

ऊपर का चित्र :
रिवालसर झील मण्डी

वर्ष : 14 अंक : 1 पूर्णांक : 53
जनवरी, 1988, : पौष-माघ 1909 शक : 2044 (वि०)

सोमसी

पर्वतीय कला, संस्कृति और साहित्य की
त्रैमासिक शोध पत्रिका

सम्पादक

डॉ० बंशीराम शर्मा

हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी

संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट, शिमला-171 001

सम्पादक : डॉ० वंशीराम शर्मा,
सचिव,
हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
शिमला-171001

त्रैमासिक : जनवरी, अप्रैल, जुलाई तथा अक्तूबर में प्रकाश्य

अंक : जनवरी, 1988

सम्पादन सहयोग : सरोज सांख्यायन

प्रूफ शोधन : निर्मल कौशल

पारदर्शियां : रमेश पठानिया

वार्षिक मूल्य—12/-
एक प्रति—3/-

प्रकाशक : हिमाचल कला, संस्कृति और भाषा अकादमी,
संगरमल भवन, क्लिफ एण्ड एस्टेट,
शिमला-171 001

विषय सूची

लेख	लेखक	पृष्ठ
लोक कर्मी गाथा—हरणात्र	प्रेम शर्मा	1
किन्नौरी की सांस्कृतिक शब्दावली	प्रो० डी.डी. शर्मा	19
गुरु घण्टा पाद के बिहार के जीर्णोद्धार का कथा-गीत	के० अंगरूप लाहुली	32
चम्बा रुमाल	हरिश्चन्द्र राय	37
'क्योंथली' बन्धुतावाचक संज्ञापद (किन्शिप् नाउन्ज)	डॉ० जगतपाल शर्मा	45
ख्वाजा – पीर	डॉ० रत्न चन्द शर्मा शास्त्री	48
छिद्र महादेव	वेद प्रकाश शांडिल	54
कांगड़ा कला और ब्रज संस्कृति	चक्रधारी शास्त्री	58
किला बैरकोट	मोती लाल घई	60
लाहुल व स्पिति के लोकजीवन की एक झलक	चन्द्रकान्त	66
सिरमौर के लोकगीत	बालक राम जसवाल	74
सामाजिक लोकगीत एक अनुशीलन	मनोहर सागर पालमपुरी	83
पेंट-रूफ वान्दरा देवता का मन्दिर	हाकम शर्मा	93

सम्पादकीय

पर्वतीय लोक संस्कृति मानव जीवन का नर्सगिक रूप है। प्रकृति पुत्र अपने स्वाभाविक परिवेश में सामाजिक क्रियाकलापों का संचालन सहज भाव से करता है। हिमालय के विभिन्न क्षेत्रों में यद्यपि सांस्कृतिक विविधता के दर्शन होते हैं परन्तु संस्कृति की आत्मा सर्वत्र एक है। इस पत्रिका के प्रस्तुत अंक में पर्वतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर रचनाएं सम्मिलित हैं।

लोक नाट्य हरणातर अलग-अलग नामों से प्रदेश के विभिन्न भागों में प्रचलित है। प्रेम शर्मा ने इसका चम्बा क्षेत्र में प्रचलित रूप का यथा तथ्य विवरण अपने लेख "लोक कर्मों गाथा" – हरणात्र में किया है। हरणातर को हरण, होरिंग आदि नामों से भी जाना जाता है। अलग-अलग क्षेत्रों में प्रचलित इस लोक नाट्य पर इस प्रकार की सामग्री अगले अंकों में भी प्रकाशित की जाएगी।

प्रो० डी० डी० शर्मा ने अपने लेख "किन्नौरी की सांस्कृतिक शब्दावली" में उस क्षेत्र के अनेक महत्वपूर्ण शब्दों की सामाजिक व्याख्या की है। के० अंगरूप लाहुली का लाहुल क्षेत्र के गुरू घंटा पाद के कथा गीत को प्रस्तुत करके उस क्षेत्र की भाषा तथा जन-जीवन का परिचय दिया है। आचार्य हरिश्चन्द्र राय का चम्बा रुमाल लेख में रुमाल के कला पक्ष पर प्रामाणिक जानकारी प्रस्तुत की है। इस लेख के साथ हम चम्बा रुमाल का एक रंगीन चित्र भी देना चाहते थे परन्तु यह सम्भव नहीं हो पाया। अतः चम्बा रुमाल का साधारण चित्र पत्रिका में दिया जा रहा है। भाषा विज्ञान पर क्योंथली के सम्बन्ध में डॉ० जगतपाल शर्मा का लेख उपयोगी है। ख्वाजा पीर पूजन की परम्परा प्रदेश की प्राचीन सांस्कृतिक परम्परा है। परन्तु इसके सम्बंध में लोगों को अधिक जानकारी नहीं है। इस अंक में डॉ० रत्नचन्द शर्मा ने अपने लेख में इस कमी को पूरा किया है। इस अंक में सम्मिलित अन्य लेख भी पत्रिका को स्तरता प्रदान करने में सहायक हैं। अभी तक इस पत्रिका को विशेषांकों की परम्परा से नहीं जोड़ा गया है। भविष्य में वर्ष में कम से कम एक विशेषांक प्रकाशित करने का यत्न किया जाएगा। इस सम्बन्ध में लोक नाट्य विशेषांक अक्तूबर, 1988 में प्रकाशित करने का प्रयत्न रहेगा।

पाठकों के अनेक पत्र पत्रिका के नए कलेवर के संबंध में प्राप्त हो रहे हैं, जिनका संक्षिप्त रूप से अगले अंक में प्रकाशन किया जाएगा।

डॉ० बंशीराम शर्मा

सचिव, हिमाचल अकादमी, शिमला—1

लोक कर्मी गाथा–हरणात्र

○ प्रेम शर्मा

हमारा देश भारत विभिन्न भागों से विभूषित होने के कारण अनेक तरह के वातावरण की सम्पन्नता से भी सुशोभित है। वातावरण की अनेकता ही यहां के निवासियों में विभिन्नता का कारण है क्योंकि जो जन समुदाय जैसे भू-भाग का निवासी होगा उसके वातावरण का प्रभाव उस समुदाय के रहन-सहन, खान-पान, बोल-चाल, रीति-रिवाज, आचार-विचार आदि सब पर अवश्य पड़ेगा तभी देश में तरह-तरह के रीति-रिवाज, रहन-सहन, कार्य कलाप दिखाई देते हैं। ऐसे में लोक शब्द देश के किसी भू-भाग के निवास जन समुदाय का सूचक कहलाता है। इसलिए भी कि उस भू-भाग से उसका जन्म जात सम्बन्ध रहता है। उसी सम्बन्ध से प्रकृति प्रदत्त प्रकटीकरण और सहज प्रवृति होती है। किसी प्रशिक्षण की आवश्यकता नहीं, कृत्रिमता की लीपा-पोती एवं नियम जाल का बन्धन नहीं। जो कुछ होता है केवल प्राकृतिक। परम्परागत कार्य कलाप और विशेषताएं स्वतः सिद्ध होने से स्वयमेव प्रस्फुटित हो उठती है। ऐसे में स्वान्तः विनोदाय के साथ-साथ लोक विनोदाय की भी बात बन जाती है। चातुर्य या नैपुण्य प्रदर्शन के लिए नहीं। तथ्यता और स्वाभाविकता के कारण उसका अपना विशेष महत्व होता है।

इन्हीं बातों को देखते हुए यहां मैं हिमाचल के ज़िला चम्बा की लोक कर्मी गाथा हरणात्र के विषय में कुछ भी लिखने से पूर्व स्पष्ट करना चाहता हूं कि हिमाचल पर्वतीय क्षेत्र होने के कारण अनेक विषयों में नितान्त एक जैसी तो नहीं, तदपि साम्यता के वृत्त से बाहिर भी नहीं है। भौगोलिक स्थिति कुछ-कुछ तो अन्तर अवश्य बनाए रखे हुए है। अतः चम्बा की तरह ही थोड़ी बहुत भिन्नता लिए यदि दूसरे जिलों में भी हरणात्र का प्रचलन हो तो मैं उनसे इसलिए क्षमा चाहूंगा कि मेरी यह प्रयास केवल चम्बा के भी साहो, पंजला, साच और उदयपुर नाम के परगनों पर ही आधारित है, दूसरे भागों पर नहीं।

हरणात्र की लोक कर्मी भी इसलिए कहना उपयुक्त समझता हूं कि इसमें अपनाया ज़ाता हुआ क्रिया कलाप लोगों के रहन-सहन, बोल-चाल, आचार व्यवहार, कलाभिव्यक्ति पर निर्भर होता है। स्वांग के माध्यम से विभिन्न वर्गों के कार्यकलाप विदुष की ढ़ंग से अन्य वर्गों के सामने प्रस्तुत होने से एक दूसरे को समझने का समय मिलता है। बोल-चाल, आचार विचार और वेश

भूषा सामने आती है। रहा हरणात्र शब्द का अभिप्राय, वह उक्त स्थान के लोगों ने विशेषकर वृद्धजनों से अधिक सम्पर्क और पूछ-ताछ करने पर भी न तो स्पष्ट हो पाया न ही नामकरण की पृष्ठ भूमिका ज्ञात हुई। केवल इतना कहा जाता रहा कि "पता नहीं पूर्वज हरणात्र ही कहते चले आ रहे हैं। किस लिए और क्यों हमें कुछ भी ज्ञात नहीं।

ऐसे जहां तक मैं समझता हूं हिरण के माध्यम से यात्रा "हिरण यात्र।" का समय पाकर अपभ्रंशित रूप हरणात्रा बनता हुआ छोटे में हरणात्र बन गया है। क्योंकि एक व्यक्ति सिर पर हिरण जैसे सींग लगा लेता है, दूसरा पीछे से उसके कन्धे या कमर पर दोनों हाथ रख कर झुक जाता है। जिस से ठीक हिरण जैसा चौपाया रुप खड़ा हो जाता है। इस बने हिरण की सुरक्षा में पन्द्रह बीस व्यक्ति ढोल ढमाका, शहनाई बजाते, गाते नाचते, एक गांव से दूसरे गांव के क्रम से यात्रा आरम्भ करते हैं। इस यात्रा में हिरण (हरण) को ही मुख्यता:, सम्भवतः इसलिए दी गई होगी कि हिरण सौम्य, सुन्दर और शन्तिप्रिय प्राणी है।

गाथा का आरम्भ :

हरणात्र वर्ष में एक बार दोहराई जाने वाली गाथा है। प्रतिवर्ष जब होली का दिन आता है लोग अपने-अपने घरों को झाड़ बुहारकर सम्पूर्ण सर्दी के दिनों का इकट्ठा हुआ कूड़ा कचरा अपने-अपने गांव के किसी थोड़े दूर वाले स्थान पर एकत्र करके कुछ और लकड़ी, घास फूस डाल कर बड़ा सा अंबार इकट्ठा कर देते हैं। ऐसा करना अधिकतर छोटे बड़े बच्चों के ही दायित्व में रहता है। गोधुली समय गांव के सब लोग अधिकतर पुरुष वर्ग अपने घरों से सिमल (सवां) कुकड़ी (मक्की) मीठ आदि के भुने हुए दाने, पानी से भरा लोटा-धूप आदि पूजन सामग्री लेकर उस ढेर में यह धारणा रख कर कि जाड़ा (सर्दी) जलाया जा रहा है डाल देते है। ग्राम के मुखिया के अभाव में किसी बड़े व्यक्ति द्वारा आग लगवाई जाती है। आग थोड़ी जल पड़ने पर अग्नि पूजन करके भूने हुए दानों (खड्डे) की आहुतियां डाल कर पुन: स्वयं खड्डे चबाते। थोड़ी देर गप शप हांकते हैं। कहीं-कहीं तो समीपस्थ गांव के उपहास प्रिय व्यक्ति को लक्ष्य बना कर आवाज लगाई जाती है "अरड़ मरड़ अमुक (उपहास प्रिय व्यक्ति का नाम) के ढालु चरड़ ओ अर्थात् शीताधिक्य के कारण नहा न सकने से मैले कुचैले तुम्हारे चूतड़ों (कुल्हों) में खुजली रोग लगे, हमने तो शीताधिक्य को स्वाहा कर डाला है।

यहीं से सलाह करके कुछ व्यक्ति हरणात्र के उपक्रम में लग जाते हैं दूसरे व्यक्ति इन का कार्यक्रम देखने के लिए अपने—अपने घरों में प्रतीक्षा करते हैं। उपक्रम में लगे व्यक्ति अपने में से सर्व प्रथम उस व्यक्ति का चुनाव करते है जो विदूषकी ढंग से भूमिका निभा सकता हो। उस का नाम नारद रखा जाता हैं। बिल्कुल नारद जैसी वेश भूषा बनाकर लम्बूतरी आकार की टोपी पहनाई जाती है। एक हाथ में तारा लेकर इधर नारद तैयार है तो उधर दो तीन अच्छे स्वर वाले लड़के गायिका नर्तिका के वेश में तैयार हो जाते हैं, इन्हें सखियां कहा जाता है।

एक ओर उपरोक्त हरण तैयार तो दूसरी ओर गद्दी-गद्दन, उन का नौकर-कामा (काम काज करने वाला) ठीक उसी प्रकार, वेश भूषा में जो वास्तविक होती है। एक व्यक्ति कोषाध्यक्ष, दो व्यक्ति भारवाही साथ गाने बजाने वाले और दूसरे शौकीन व्यक्ति। वाद्य यन्त्रों में ढोल, शहनाई, एक तारा छैने, नादी कहीं-कहीं नरसिंहा। अब मण्डली तैयार हो गई। इस मण्डली का नाम "हरण" होता है।

हरण यात्रा के लिए तैयार है। यात्रा एक गांव से दूसरे गांव, दूसरे से तीसरे के क्रम से आरम्भ होगी। सब से आगे ढोल वाला उसके पीछे शहनाई वाले और दूसरे वाद्यों वाले, क्योंकि चम्बा शिव भूमि कहलाती है। इसलिए यात्रा के लिए तैयार हुए सब व्यक्ति सर्व प्रथम एक स्वर में बोल उठे-बोलो कैलाशपति शिव जी महाराज की जय[3]। ढोल पर डंका, जोर-जोर से सीटियों, हो हल्ला इसलिए किया गया कि यात्रा में आने वाली बाधाएं मार्ग से दूर हट जाएं। ढोल बजाता हुआ ढोली (ढोल बजाने वाला) चल पड़ा। ढोल से ध्वनि स्पष्ट कर रही है- बैझा-बैझा होई जाणी बैझा बैझा अर्थात् यह यात्रा वाह! वाह! हो जाएगी वाह-वाह! शुभ यात्रा होगी शहनाई के स्वर के साथ सब व्यक्ति स्वर मिलाकर गाते हुए बढ़ चले किसी घर के आंगन में पहुंच कर यह गीत गाते हैं -

हरण आया, हरणोटा, बरसे दिन आया।
ए हरणोटा भला हो, बड़े दूरे दा आया॥
बरसे दिने दी है फेरी, अगे ठाकुर जाणे।
धर्मियां दे दरवाजे, हरणे सिंग डाहे॥
जल्दी करो मुंझयाणी, असां दूरा जो जाणा।
जल्दी करो घर मोय्हो, असां दूरा जो जाणा।
घरे दे बो घर मोय्हो, लैणा नगद रूपया॥
होर असां दाणे लैणै, कन्ने नगद रूपैया॥
हरी-हरी कणके दी डाली जलेया तेरा पेट
वाड़ भन्नी जौ खाए जलेया हरणे दा पेट
(एक सखी की ओर हाथ से संकेत करके)
झुंड झमाके बालिये कुस पुरषे दी नारा।
बालु बलाका बालिये तेरा जोबन भारा॥
झांझर झमाके बालिये, चल तू संग मेरे।
उत्तर :— इस हरणोटे जो मारे, तां चलणा संग तेरे॥
जागो-जागो घर मोय्हो, संग छोड़ीये जांदा।
ढोल ढमाका एय्हो, संगछोड़ीये जांदा॥

यह हिरण का बच्चा हिरण आ गया है। यह एक वर्ष के बाद आया है। यह हिरण बालक बड़े दूर से आया है। इस हिरण की यह वर्ष भर के बाद फेरी है, आगे की ईश्वर जाने। जाने भविष्य में आयेगा भी या नहीं। धर्मात्मा व्यक्ति के दरवाजे से इसने सींग लगा दिये हैं, ताकि गृहस्वामी दरवाजा खोल कर इसे कुछ दे दें। मानो कह रहा है—ए गृह स्वामिनी कुछ देने के लिए शीघ्रता करो हम ने दूर जाना है। ए घर वालो! जल्दी करो हमने दूर जाना हैं। ए घर वालो! मैंने नगद रूपया लेना है, इससे कम नहीं। नगद रूपया तो लेना ही है साथ उसके दाणे (अनाज) भी लेने हैं। (गृह स्वामी के उलाहने के रूप में)

इस हिरण का पेट जल जाए इस ने बाड़ तोड़ कर हरी-हरी गेहूं की शाखाएं और जौ खा लिए हैं (जब यह उलाहना मिलता है तब हिरण के रक्षकों में से एक व्यक्ति सखी के रूप में नाच रहे व्यक्ति की ओर हाथ का संकेत करके बात को उपहास में ले उड़ता है)। ए छैल छबीली घूंघट बालिये तू कौन से पुरुष की नारी है? ओ बालु बलाक बालिये, तू तो बड़े यौवन वाली है। ए झांझर की झंकार वाली, तू मेरे साथ चलेगी? उत्तर मिलता हैयदि तू अपने इस बड़े प्यारे हिरण को मार देगा तब तेरे साथ चल पड़ूंगी। (गृह स्वामियों के लिए प्यारी बात कहकर और उपहास की झलकी दिखा पुनः) क्योंकि रात का समय बीत रहा है - हे घर वालो! अब जल्दी जाग जाओ हमारा साथ हमें छोड़ जाएगा। साथ ही नहीं यह ढ़ोल ढमाका भी छोड़ जाएगा।

इतना कहने पर भी जब जान बूझकर गृह स्वामी तमाशा देखने के लिए कुछ भी देने में लापरवाही दिखाते हैं तब गद्दी, गद्दन, कामा उछल पड़ते हैं। "हउं हेरनु न कजो नी जागदे सुतूरे बझिये। ओ जोवनु! छड्डे भला, कसकी, गीते री रुणक। फिरी हेरे मेरा रंग हउं कै करनु"।

हिन्दी रूपान्तर—मैं देखता हूं सोए हुए मालिक कैसे नहीं जागते। ए जोवनु! तुम किसी गीत को गुन गुनाओ फिर देखना मेरा तमाशा, मैं क्या करता हूं।

गद्दन—ढूंढ मेरे गद्दिया! ढूंढसुआ! पैरा मोचड़ु पाणे, ढूंढा हो।
ढूंढ मेरे गद्दिया! ढूंढसुआ लक्का घाघरी लाणी, ढूंढा हो।
ओ ढूंढ मेरे गद्दिया! ढूंढसुआ जंघा सोथुणु लाणा, ढूंढा हो।
ओ अड़ेया! ढूंढसुआ हिका काजली लाणी, ढूंढा हो।
नच मेरे गद्दिया ढूंढसुआ! गला गलसरी पाणी, ढूंढा हो।
मार फरांटी ढूंढसुआ! नक्का नथली जे पाणी, ढूंढा हो।
मत्थे बिंदुलु बी लाणा ढूंढसुआ! सरा सालणु बी लैणा ढूंढ़ा हो।

हिन्दी रूपान्तर ओ मेरे चालाक, डंडा लिए गद्दी, तुम चालाक हो ही, मैंने पैरों में जूते भी

डालने हैं। ओ मेरे होशियार दण्डधारी गद्दी ! मैंने टागों पर पाजामा भी पहनना है। ओ सोठाधारी। कमर के लिए घघरी भी तो चाहिए। प्यारे दण्डधारी ! छाती पर भी तो कुर्ती पहननी हैं। ओ दण्डधारी गद्दी ! नाचो, गले में माला भी डालनी होगी सोठे वाले फराटी मारो, नाक के लिए नथली भी चाहिए। माथे पर लगाने के लिए बिन्दी, सिर पर ओढ़ने के लिए दुपट्टा भी लेना है।

इस गीत से प्रतीत होता है कि गद्दन अत्यन्त मान्य समझने के कारण अपने पति का नाम नहीं लेती। कभी सोठे वाला कभी डंडे वाला कहकर पुकारती है। क्योंकि गद्दी हाथ में एक विशेष प्रकार का डंडा लिए होता है। यह डंडा नीचे से एक ऊपर से दो शाखाओं में विभक्त होता है। जिसे स्थानीय लोग सांघा कहते हैं। इस गाने की धुन का संकेत करता हुआ गद्दी — गींझा गींझा (हिलमिल नाच गाना) बोलता हुआ कई तरह की अंग भगिमाओं द्वारा अपने सेवक (काम्मा) गद्दन, नारद और सखियो के साथ खूब नाचता है।

सखियां भी पीछे नहीं रहना चाहती, किसी स्थानीय लोकगीत के स्वर अपनाकर बसन्त समय की कोयल जैसी कूक उठती हैं जैसे – बिसरी पांगी रे जोता हाय बो मेरी बिसरिये।

लिह्सी जंघा जोत किय्हां लाणा हाय बो मेरी बिसरिये।
अज असां चम्बे के जो जाणा, हाय बो मेरी बिसरिये।
चम्बे ताकती दी सूई ल्वाणी, हाय बो मेरी बिसरिये।
लिह्सी जंघा दुवली प्राणी, हाय बो मेरी बिसरिये।
धारां पर बदले दी लेसां, हाय बो मेरी बिसरिये।
प्यारु मेरा देश परदेशां, हाय बो मेरी बिसरिये।
धारा पर फुलियां करेरी, हाय बो मेरी बिसरिये।
रस्ते चलो री कुनी छेडी, हाय बो मेरो बिसरिये।
गाई दा नां तेरी बिन्दो, हाय बो मेरी बिसरिये।
छाती कने लाई लेयां मिंजो, हाय बो मेरी बिसरिये।

हिन्दी अनुवाद—एक युवती अपने प्रियतम से मिलने पांगी से चम्बा नगर की ओर प्रस्थान करती है। तब उसकी सखी बोली—ओ बिसरिये (युवती का नाम) चम्बा तूने जाना है पर आगे पांगी का पर्वत है, तू कमजोर टांगों से कैसे पार करेगी। युवती उत्तर देती है – भले ही कमजोर टांगे और दुर्बल शरीर है परन्तु चम्बा पहुंच कर ताकत इंजैक्शन लगवाना है पर मैं करुं भी क्या ? क्योंकि इधर पहाड़ों पर बादल भी छाया है, उधर प्रियतम भी परदेश में हैं। सखी कहती है बिसरिये ! पहाड़ों पर कांटेदार झाड़ियां फूल पड़ी हैं अर्थात वर्षा ऋतु आ गई है। (प्रियतम के साथ रहने का समय है) तुझे रास्ते पर चलती हुई को किसने छेड़ा है ? युवती बोली – तेरी गाय के माथे पर जैसे बिन्दी जैसा चिन्ह चिपका होने से उसका ना बिन्दो है,

उसी प्रकार तू मुझे अपनी छाती से चिपका ले।

गद्दी, गद्दन, नारद आदि सब गाते हुए नाच रहे हैं. अब गृह स्वामी जैसे ही बाहर पहुंचता हैं हरण को आगे बढ़ाया गया जय-जयकार बोलकर गृह स्वामी के किसी बच्चे के अभाव में स्वामी को ही हरण की पीठ पर चढ़ा कर दो चार चक्कर लगाए गए। गृह स्वामी नीचे उतर कर इच्छानुसार पैसे देता हैं। गृहणी अनाज देती है और परिवार की शुभकामना करती है। पैसे कोषाध्यक्ष के पास अनाज भारवाही के थैले में जमा हो गया। इसी क्रम से एक से दूसरे, दूसरे से तीसरे घर हरण बढ़ता है। किसी दूसरे गांव के हरण से आमना-सामना हो जाए तब बल वाला हरण दूसरी मडली का सब सामान, पैसे अनाज लूट लेता है। इसलिए ऐसा समय आने नहीं दिया जाता।

होली के दूसरे दिन, कहीं-कहीं आठ दिन निरन्तर यात्रा करने पर सब पैसे, अनाज इक्ट्ठा करके रख लिया जाता है। जब किसी दिन पार्टी के सब सदस्य इकट्ठे होकर यह निश्चय कर लेते हैं कि किस दिन हरणात्र करनी है। निश्चय के अनुसार उस दिन सुबह से ही लेकर उस गांव में ढोल बजाना आरम्भ कर दिया जाता है। जिस का अभिप्राय होता हैं मुनादी करना कि आज इस गांव में हरणात्र हो रही है। निश्चय करने के दिन और हरणात्र के दिन के बीच वाले दिनों में पार्टी द्वारा खूब प्रचार भी किया जाता है कि अमुक दिन हमारी हरणात्र है।

हरणात्र के दिन — अब हरणात्र का दिन समीप आ गया। पार्टी के लोगों में कार्य बंटवारा हुआ। लकड़ी का प्रबन्ध, मक्की पिसवाना, बाजार से नमक, हल्दी, घी, तेल, मसाला तथा इमली आदि लाना तरह्-तरह् के मुखौटे तैयार करना आरम्भ हो गये। सब तरह के व्यय एकत्र हुए पैसों और अनाज में से ही किए गये।

हरणात्र के दिन सुबह से ही ढ़ोल बजने लगता है। हरणात्र के लिए कोई खुला स्थान, आंगन निश्चित करके सफाई की गई। निश्चित स्थान के मध्य भाग में लकड़ियों का एक बड़ा सा ढेर लगाया गया जिसे लोग 'घ्याणा' इसलिए कहते हैं कि यह ढेर आग जलाने के लिए लगाया गया है। अर्थात् आग होना अगहोना होता हुआ 'घ्याणां' शब्द बन गया। दूसरी ओर रसोई का कार्य आरम्भ किया जाता हैं, भात, मक्की के आटे के लड्डू, कढ़ी, खट्टा, दाल आदि पकाया जाता है। हरणात्र दिवस को रात्रि तक दूर-दूर के गांवों से पहुंचे दर्शकों को भोजन कराया जाता है स्वयं पार्टी वालों ने भोजन किया, यदि शेष भोजन सामग्री रहती हो तो कुछ और लोगों को भी भोजन कराया जाता है। बर्तनादि सम्भाल कर स्वांग की तैयारी होने लगी। लगाए हुए लकड़ी के ढ़ेर को आग लगाई गई। रोशनी का काम और सेंकने का काम दोनों ही घ्याणें ने सम्भाल लिए सुविधा होने पर रोशनी का दूसरा प्रबन्ध भी किया जा सकता है जैसे लैम्प, लालटेन, गैस, मुसाहरे (विशेष प्रकार की लकड़ी की बनाई मशालें)

हरणात्र नृत्य, गीत, वाद्य, अभिनय चारों का मिश्रण होता है। किन्तु न नृत्य के लिए किसी

वशेष स्थान की सज्जा होती है, न गीत के लिए। वाद्य में भी कोई मिश्रित वाद्ययन्त्रों का विधान नहीं। ढोल, ढोलक, तबला, नगाड़ा, शहनाई जो भी उपलब्ध हो कोई आलोचना नहीं। अभिनय के लिए किसी प्रकार के मंच और रंगशाला अथवा पर्दे की कोई आवश्यकता नहीं। दर्शकों के बैठने की व्यवस्था भी आवश्यक नहीं। वे घ्याणे के गिर्द काम करने वालों को थोड़ी जगह छोड़कर चारों ओर बैठ जाते है। इर्द-गिर्द के घरों के कोठे, बरामदे, छतों, खेतों जहां भी स्थान मिल जाए बैठ जाते हैं। केवल इतना ध्यान रखते हैं कि नाचने, गाने-बजाने और अभिनय करने वाले दिखाई दें एवं आवाज सुनाई दे। वादक वृन्द और उनके साथ गाने वाले भी घ्याणे के कुछ अन्तर पर दर्शकों के साथ ही बैठ जाते हैं। अभिनेता पास वाले घर में ही सजसजा करके अपने समय पर सामने आ जाया करते हैं। इससे नितान्त स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। अभिनेता, गायक, नर्तक इस प्रकार घ्याणे के गिर्द घूम फिर कर अपनी भूमिका निभाते हैं जिससे सब दर्शक उनका आकार प्रकार भली-भांति देख सकते हैं। यही कुछ हरणात्र में विशेषता पाई जाती है।

हरणात्र के भेद :— हरणात्र द्वारा एकत्र वस्तु जात और धन राशि को तीन प्रकारों से लोक विनोदाय प्रयुक्त किया जाता है।

१. हरणात्र।
२. झांखी।
३. भगत।

हरणात्र की तरह सब कार्य कलाप झांखी में भी हुआ करते हैं। भेद केवल इतना है कि हरणात्र का आरम्भ पूर्वोक्त हरण प्रदर्शन से होता है, झांखी में सखियों के गान द्वारा। भगत दोनों से इसलिए भिन्न होती है कि इसमें किसी लीला को प्रधानता दी जाती है और शेष स्वांग गौण समझे जाते हैं; हास्य प्रधान अभिनय केवल लोगों की विमनस्कता को हटाने के लिए ही होता है, कृत्रिमता समाई रहती है अर्थात थोड़ा शास्त्रीय रुप से प्रदर्शन किया जाता है। दर्शक पूर्वोक्त स्थानों पर बैठ चुके हैं। बड़ी उतावली से प्रतीक्षा की जा रही है। पास वाले घर के बाहर ढोल शहनाई बजना आरम्भ हुए। लोक उचक-उचक कर देखने का प्रयास करने लगे।

हरणात्र का आरम्भ :— लोगों ने वही पूर्व परिचित नारद, सखियां, गद्दी-गद्दन और आगे-आगे हरण घ्याणे की ओर आते हुए देखे। ढोल पर वही बैंझा-बैंझा होई जाणा बैंझा, शहनाई और मौखिक भी-हरण आया हरणोटा भला बो। गीत गाया जा रहा है। घर-घर यात्रा करके अन्न तथा और पैसे जुटाने वाला हरण अब अपने साथियों सहित धीरे-धीरे घ्याणे के पास पहुंच गया। नारद उसके साथियों ने चारों ओर हास्य जनक मुद्रा से देखा, पुनः हरण के साथ-साथ घ्याणे की तीन परिक्रमा करके अग्नि देव को नमस्कार की। हरण अपने स्थान को बाजे गाजे के साथ लौट गया, शेष नारद आदि दर्शकों के साथ एक ओर बैठ गए। उधर से हरण को पहुंचाने गए गायक, वादक लौट आए जहां गायक, वादक बैठे हैं बैठ जाते हैं। गायकों ने गले साफ किये वादकों ने वाद्य साधे। नारद, सखियां, गद्दी आदि घ्याणे के सामने पंक्ति बद्ध हो ईश्वर स्तुति गाते हैं। कहीं स्तुति गान आरती ही गाई जाती है इसके लिए कोई लोकगीत निर्धारित नहीं।

स्तुति समाप्त होते ही सखियों के सिवा दूसरे सब कहीं दर्शकों में ही अथवा पृष्ठ गायकों के पास बैठ जाते हैं। लड़कियां बने लड़के (सखियां) क्योंकि स्त्री पात्र का अभिनय लड़कों और पुरुषों द्वारा ही किया जाता है। लड़कियों और स्त्रियों को हरणात्र में कोई स्थान नहीं दिया जाता। साहो जैसे ऐसे स्थान भी है जहां हरणात्र का आरम्भ नारद के स्थान पर महात्मा (साधुवेश) धारी से होता है। वह सबसे पूर्व अग्नि पूजन करके प्रसाद बांटा करता है। प्रसाद भुने हुए दाने या ऐसे ही दूसरे पदार्थों का हुआ करता है। कुछ भी किया जाए अग्नि की प्रतिष्ठा वैदिक काल की परम्परा का सूचक अवश्य है। हां तो लड़की वेशधारी लड़के लोकगीत गाते हुए नाचना आरम्भ करते हैं। थोड़े समय के उपरान्त जैसे ही उनका नाचना, गाना समाप्त होता है, बैठे हुए पृष्ठ गायक गाना आरम्भ करते है। एक व्यक्ति जरजर बांस का छोटा सा डंडा जिसे छिछड़ा कहा जाता है हाथ लिये प्रवेश करता है गाना :—

घरे आई जा, नारदा हे सारदा !
घरे आई जा, नारदा हे सारदा !
हसदा-हसदा आ नारदा !
तू दौड़दा कूददा आ सारदा !
अपनी खेल दिखा नारदा !
घरे आई जा दिसा सारदा !

हिन्दी अनुवाद :— हे नारद सारद ! घर आ जाओ ! हंसते हुए दौड़ते कूदते आओ और घर आकर अपने करतब तो दिखाओ। धोती पहने खड़ी की हुई बोदी के आकार की लम्बी ऊंची टोपी पहने नारद का प्रवेश। एक तारा हाथ में हैं। एक तारा बजाता है। तिनउं, तिनऊं, तिनउं तिनी-तिनी तिनउं, तां तां तिन तिन ऊं।

रुपान्तर :— उसने-उसने-उसने, उसी ने, तभी तो तभी तो अर्थात् उसी नारायण ने बनाया है तभी तो यह संसार वर्तमान है। पृष्ठ गायक गाते हैं :—

घरे आई जा निकी देही गुजरिये।
घरे आई जा निकी देही गुजरिये॥
गुजरी आई कलन्दरे दी।
ए गाणा गान्दी अन्दरे दी॥

अर्थ :— ए छोटी गुजरी घर आ जाओ। यह गुजरी कलन्दर नाम के गांव की है जो अन्दर से गाना गाती आई है। लड़की वेशधारी लड़का गुनगुनाता, घूंघट निकाले प्रविष्ट होता है लजाता शर्माता हुआ। प्रायः इस लड़के को लड़की मानकर सखी कहा जाता है। जैसे ही शर्माती हुई घूंघट वाली को नारद देखता है उससे उपहास करना आरम्भ करता है।

'तू ता बड़ी छैल हुणी, ता ही ता तें घुंड है कढोरा, घुंवट हटाता हुआ — 'ओ मेरेया बब्बा ! ए मण्ही है कि बिजली । मारी सुट्या इसा ता । हे नारायण एड्डी छैल तैं बणाई किय्हां हुंघी ? मिंजो मारी कि दिंघी, छडदी नी" ।

सखी........ धक्का देकर परेडा मर । शर्म नी ईंदी लम्बूतरे जो । शीशे अन्दर अपणा मुंह नी दिखदा, बन्दर जणा ।

हिन्दी अनुवाद :— तू तो बहुत सुन्दर होगी, तभी तो तुने घुंघट काढ़ा है बाप रे ! यह स्त्री है कि बिजली । इसने तो मार ही दिया । हे नारायण ! इतनी सुन्दर तुने बनाई कैसे होगी । यह मुझे मार ही देगी, छोड़ेगी नहीं ।

सखी—परे मर । शर्म नहीं आती है, बन्दर सा । चारों ओर से लोगों के ठहाके सुनाई देते है । इसी समय छिछड़ा धारी व्यक्ति जिसे 'पूछने वाला' चौधरी, पुछैया आदि कई नामों से जाना जाता है । नारद के समक्ष आकर नारद से कहता है—ओ नारद भगत, न्हाई लै, धोई लै उधो जो बुलाई लै (नारद भगत, नहा धोकर उधो को बुला लो)

नारद —किय्हां न्हसाई ते उठाई लेयां ? हथ लाणा दिन्दी नी ! (कैसे भगा ले जाऊं, उठा ले जाऊं हाथ तक तो लगाने देती नहीं ?) पूछने वाला दर्शकों की ओर देखकर—लेया भई ! ए भी चली मिल्या । बोल्या किछ ते समझदा किछ (लो भई, यह भी चलकर पितरों से मिल गया है । कहा कुछ जाता, समझता कुछ और है) नारद की और घूमकर ..... . नारद भगता ! मैं बोल्या स्नान लै कने उधो जो बुलाई लैं । (मैंने कहा स्नान कर लो और उधो को बुला लो)

नारद—न ना करना । तू ता सच बोलना पर नानी तेरी ए भी मन्नों तां न । उधो जो सद्दा ते होर फाह् पाई लेयां । (अस्वीकारना मत । तू तो सच बोल रहा है पर यह तेरी नानी माने तब न । उधो को बुला कर और विपत्ति खरीद लूं) ।

पूछने वाला पहले मेरी गल समझ, फिरी ऊटपटांग बक । (पहले मेरी बात को समझो फिर उतर दो)

नारद—अच्छा लगया हऊं न्हाणा । तू गीत गा । (अच्छा मैं नहाता हूं तुम गीत गाओ)

पुछने वाला गाता है— नारद लगया न्हाणा बोओ, अंगणे चिकड़ होया तां (नारद नहा रहा है इसलिए आंगन में कीचड़ हो गया है)

नारद— शरीर पर हाथ फेरता हुआ ....हर हर गंगे, हर हर गंगे, मूर्ख न्हादे होई करी नंगे (हर हर गंगे । वे मूर्ख है जो नंगे होकर नहाते हैं)

पूछने वाला—झटपट करते उधो जो सद (शीघ्रता करो और उधो को बुलाओ)

नारद – भाई-भाई ऊं ! (भाई-भाई हे !) दूर से उधो की आवाज— ऊ !

नारद—तुम नेड़े हो की दूर ? (तुम समीप हो या दूर) फिर उधो की आवाज दूर बो दूर (दूर भई दूर)

नारद –मित्री मेरी की तेरी ? (मित्रता मेरी या तेरी) वही आवाज—मेरी बो मेरी (मेरी भई मेरी)

अब दर्शकों के मध्य से दो लड़के साधुक्कड़ी वेश में दौड़ते हुए 'भले गुसांयां, राम का नाम लै, भले गुसांयां राम का नाम लै ।
धूणी लगाई दे राम का नाम लै, भभूति लगाई लै, राम का नाम लै ॥'
ध्याणे के पास पहुंच कर नारद को इधर-उधर से खींचते हुए कौले आ कौले आ (पास आ-जा पास आ-जा)
नारद—ओए ! ए जल भूतिये कुधा आए ? (अये ये जलमुंहें कहां से आ गए ।)
पुनः वही लड़के—कौले आ कौले आ ।
नारद—छड्डा मेरा पिच्छा, सल्ही दे म्यालो । (छोड़ो मेरा पीछा, बुझी हुई चित्ता की लकड़ियो)

आगे-आगे इधर-उधर नारद भागता जाता है पीछे वे दोनों, उधों दौड़ते हैं । कभी नारद उनकी ओर किसी को धकेल देता हैं, कभी किसी को । यहां तक की पास खड़ी सखी को ही धकेल देता है । अन्त में क्रोधित होकर उनकी दाढ़ी मूंछ को जलाने के लिए जलती हुई लकड़ी खींचकर उनके पीछे दौड़ता है । दोनों खूब तंग करके भाग जाते हैं ।

इस दृश्य को दिखाने का अभिप्राय उस चिरन्तन विचार को प्रकट करना है जो रात के समय पर्वतीय क्षेत्रों में किसी को आवाज़ देकर नहीं बुलाना चाहिए । यदि कोई बुलाता है तो अपने लिए विपत्ति मोल लेता है । क्योंकि दूत भूत कुछ भी आ सकता है । ठीक भी है नितान्त विजन क्षेत्रों में ऐसा होना असंभव नहीं माना जा सकता ।

अब नारद सिर पर हाथ रख कर बैठ जाता है । लम्बी-लम्बी आहें भरता है । तभी पास खड़ी सखी की दूसरी तीन सहेलियां जो पास गायक, वादकों के पास बैठी थी, आ जाती हैं । कोई सा लोकगीत गाती हुई सब नाचती हैं । नारद खेद मुक्त होकर उनसे तरह-तरह का उपहास करता रहता है । सखियों का मन बहला कर जैसे ही अपने स्थान को लौटती हैं, पूछने वाला डंडा लेकर नारद से कई प्रश्न करता जाता है । नारद पूलेष भरे शब्दों में अनेक अद्भुत उत्तर देता जाता है । उत्तर सुन-सुन कर लोग खूब हंसते जाते हैं ।

ऐसा करने से लोगों को यह परिचय दिया जाता है कि एक शब्द के अनेक अर्थ हुआ करते हैं तथा बात को घुमाया फिराया कैसे जाता है । इसलिए प्रत्येक बात समुचित ढंग से ही कहनी चाहिए ।अन्यथा अर्थ का अनर्थ भी हो सकता है ।

अब पुनः लोग उचक-उचक कर देखने लगे । ऊन से तैयार किया लम्बा चोला पहने कमर पर डोरा (ऊन के धागों से बनाई काले रंग की रस्सी जैसी) बांधे, पीठ पर छिकणु (सोने के वस्त्र, बर्तन, खाद्य पदार्थों का बोझ) उठाए, कान तक ढांपने वाली गर्म टोपी पहने मोटे-मोटे नीचे लोहा जड़े जूते, नंगी टांगे, कोख में दूसरे छोटे मोटे सामान के साथ एक मेमना उठाए, एक हाथ में सांधा दूसरे में नली वाला हुक्का लिए, उसे गुड़ गुड़ाता हुआ साथ लम्बी लुआंचड़ी (नीचे घाघरेनुमा ऊपर बास्कट की तरह टकने तक लम्बी चोली) पहने, कमर पर डोरा बांधे छिकणु

ऊपर एक बच्चा बिठाए, हाथ में सोग थामे खद्दर का दुपट्टा ओढ़े गद्दी, गद्दन का प्रवेश। गायक वृन्द गाना आरम्भ करते हैं —ढूंढ मेरे गद्दिया ढूंढसुआ (पहले लिखा जा चुका है) गद्दी-गद्दन मस्त होकर नाचते हैं। गाना समाप्त होते ही एक तारा तुन तुनाते नारद और उसके साथ सब गायक गाते हैं।

ऊंची-ऊंची धारा शिबु नीमे-नीमे चलदा।
तेरी चलदे दी चाल पुछयाणी भलया/
दूरबीनिया, ठेकेदारा !
ठेकेदारा अड़ेया, हौलेदारा !
तेरी चलदे दी चाल पुछयाणी भलया, ठेकेदारा हो।
नम्बरदारा नी तू ठेकेदारा !
ठेकेदारी दा मजा बरसाते भलेया,
दूरबीनिया, ठेकेदारा !

हिन्दी अनुवाद—ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों पर शिबु झुक-झुक कर चलता है। तेरे चलते हुए कि अड़या (दोस्त) मैंने चाल पहचान ली थी, दूरबीन वाले ठेकेदार।
ठेकेदार होलेदार दोस्त ! ऐ भले मानुष मैंने तेरे चलते हुए की चाल पहचान ली थी।
ए नम्बरदार और ठेकेदार। ठेकेदारी का मजा तो बरसात में ही होता है।

अब गद्दन के साथ गायक गाने लगे—

छिकणु लाणा रीणा, गद्दिया जालमा।
धारा लगा सीणा, गद्दिया जालमा।
इत्ते किय्हां जीणा गद्दिया जालमा।
बुन्हेडा जाई जीणा, गद्दिया जालमा।

ओ जालम (गद्दन का दिया नाम) गद्दिया ! छिकणु अब टेढ़ा लेना होगा। अब पर्वतों पर बर्फ गिरने लग पड़ी है। यहां कैसे जीणा होगा। अब तो नीचे (मैदानी भागों में) जाकर ही जीना पड़ेगा।

पुनः गद्दी-गद्दन दोनों मिलकर गाते हैं—

जांधर जाणा जीणा बो गद्दिया।
जांधर जाणा जीणा हो।
धारा लगया सीणा बो भलया।
जांधर जाणा जीणा हो।

मिंजो की गलानी वो गद्दणी
दोन्हां जाणा जीणा हो

छिकणु लाणा रीणा अड़ेया ।
जांधर जाणा जीणा हो ।
जां धारा लगदा सीणा वो गद्दिया ।
जाणा पूंदा जीणा हो ॥

दानों मस्ती में नाचते हैं । लगभग उपरोक्त ही अर्थ होगा । इसलिए स्पष्ट करने की आवश्यकता नहीं ।

पूछने वाला गद्दी से पूछता है ओ मित्रा ! तू किल्ला ही है कि कोई सौंगी भी है ? (ओ मित्र ! तू अकेला ही है अथवा कोई और भी साथी है) ।
गद्दी न हला । केल्हा कजो, सीते कामा भी है इच्छूरा कै पता, कहाँ है गच्छुरा । कर हका नेडे भोला ता पुणी पाल्ला न ? हउं हक ता दिन्नु भला ।

ओ काम्या ! काम्या ओ ! न षुणु । हउं कै बुझूं कहाँ चली-गो । ओ काम्या ! भूंखुआ ओ ? —

न भई । अकेला क्यों हूं साथ में काम करने वाला भी आया है । न जाने कहां चला गया है । यदि कहीं समीप होगा तो सुन ही लेगा, मैं आवाज़ देता हूं ओ काम्या । एक काम करने वाले। नहीं सुना । मैं क्या जानू कहां चला गया । ओ काम्या । भूंखुआ नाम ओ !

दर्शकों के दूर से मिशाल लिए खड़ा भूंखु बोलता है — कै बन्हा बझिया । हुंढु करनु, हुंढु जरा धीरे से— लुड़ी गो जल बझिया । गल्ले-गल्ले हक्का ही लगूरा दीणा । जोर से—
बझिया कै हा भचूरा तुज्जो ? इठी मेरे प्राण निकेहु करदे ढालु री पीड़े, तुहे जो अपनो पियुरी । मरी गो जल ।

मालिक, क्या है ? मैं चल रहा हूं । लुढ़क जाए जल स्वामी बात–बात पर आवाजें ही देता रहता है । मालिक, क्या हुआ है तुम्हें ? यहां चूतड़ों की दर्द से मेरे प्राण निकल रहे हैं । तुम्हें अपनी पड़ी है । मर गया जल मुंहा ।

धीरे-धीरे बुड़बुड़ाता हुआ कामा कार्य क्षेत्र पर जैसे ही पहुंचा लोग उसे देखकर गड़गड़ा उठे, ठहाके पर ठहाके । उसकी वेशभूषा जो वैसे ही थी । बाकी सब गद्दी की तरह पर मैला कुचैला लम्बी-लम्बी दाढ़ी, कुतिया कन्धे पर, छिकणु पीठ पर, फटे लटके वस्त्र, बड़ी-बड़ी आंखे, मूंछ का एक किनारा चढ़ा हुआ, दूसरा लटका हुआ, नाक पिचकी हुई । मोटापा उसे और भी भूत बनाए हुए था, बात-बात पर नाक से सूं-सूं करता जाता । लोगों के लिए अच्छा खासा तमाशा बन गया । आते ही कुतिया को भूमि पर रखकर बोला - बड्ढी यारे षोग्गा जो पिट सारी सिजी गो । कर्मा-ण्हियें मुत्री हा दितूरा । मने ता इछ करदी अक्को ही फट पउं ढढ मुकाई छड्डूं । षोगी भारी ही बड़ी हा ।

इनकी मरण क्रियोपरान्त यह काटी जाए। सारी पीठ गीली हो गई है। इस कुकर्मी कुतिया ने पेशाब कर दिया है मन चाहता है एक डांक मारूं आफत ही समाप्त कर दूं सोगी (सोग में प्रयोग योग्य) (सोग उस बात को कहा जाता है जब किसी सगोत्री की मृत्यु होने पर क्रियाकर्मों के उपरान्त मांस या हींग रसोई में डाल कर सब सगोत्रियों द्वारा खाया जाता है। उस दिन मांस खाने के लिए जिस मेढ़े, मेषी या बकरा, बकरी को काटा जाता है उसे यदि पुंलिंग है तो सोगु, स्त्री-लिंग को सोगी कहा जाता है) भारी बहुत है ! कामा जैसे ही पहुंचा गाने वाले गाते हैं, गद्दी, गद्दन, कामा नाचते हैं।

गीत— आया भूंखु कामा भला बो,
आया, भूंखु कामा हो।
चली आया बीरू कामा भला,
चली आया बीरू कामा हो।
कुण पाले तेरी भेड़ां भला बो,
पाले कुण भेड़ां हो।
इन्हां पाले बीरू कामा भला बो,
पाले बीरू कामा हो।

ए भाइयो ! मेरा सेवक भूंखु आ गया है। यह मेरा बहादुर सेवक चलकर आ गया है। बहादुर सेवक आ गया, अब तुम्हारी भेड़ों को कौन पालता है। इन भेड़ों को बीरू सेवक ही पालता है, यही पालता है।

गद्दी– भूंखुआ ! तू कहां चली गच्छूरा थू ?

भूंखू—कहां गाण्हा अक षोगी डुंगारी गुहई थू गछोरी तहे जो तोपणा थू लगूरा।

गद्दी--मुलु कि नह मुलु ?

भूंखु—मुलदी किनेह, गान्धी कहां। मुलदे कने मेइं अक ओ फट हा थियूरी (ठोकूरी) तहे जो भूणी आद इची गच्छूरी नानी। षोगी रोज उजाड़ी जो ही गान्धी।

गद्दी—खरी भुई मुली ता गो न। अबे तू अक खरा जीन्हा गीत षुणाई जड़।

भूंखु— (लोगों की ओर देखकर) हेरा भला, मेरा बझिया, बजीहण भी कीन्हे छोंकी हिन। (गायक वादक की ओर देखकर) ओ बजन्तरी ते गौणे बालियो। त्यार भुची गच्छा।

हिन्दी अनुवाद—

गद्दी—ए भूंखु ! तू कहां चला गया था ?

भूंखु—जाना कहां था एक छोटी बकरी जो सोग के दिन काटी जाने योग्य है. गुम हो गई थी उसे ढूंढने गया था।

गद्दी— मिली या नहीं ?

भूंखु--मिलती क्यों नहीं। कहां जा सकती थी। मिलते ही मैंने एक ऐसी टिकाई कि उसे नानी

याद आ गई होगी सोग योग्य प्रतिदिन उजाड़ी (चोरी से खेतों में फसल खाने की क्रिया) के लिए ही जाती है।

गद्दी— अच्छा हुआ मिल तो गई है न। अब एक अच्छा सा गाना सुनाओ।

मूंखु—(लोगों की ओर देखकर) देखो तो मेरा मालिक, मालकिन कैसे शौकीन हैं। (गायक वादक की ओर देखकर) गाने बजाने वालो तैयार हो जाओ (भूंखु और गायक गाते हैं।)

छोले माहे दी दाल, सूंधा रचया दा।
धोवणियें लाई पणताल धोवा नचेया दा ॥
छोले माहे दी दाल, सूंधा रचया दा।
धोवणियें लाई पणताल धोवा हसेया दा।
ढोले ढमाके दा ताल, बझिआ दुड़केया दा ॥
छोले माह दी दाल सूंधा रचया दा।
माह छोले की दाल सूंधा रचया दा।

माह छोले की दाल में हींग पड़ा हुआ है। धोबन ने घी में दाल डाल दी है, जिस से प्रसन्न होकर धोबी नाच उठा है। छोले माह की दाल में हींग रचा हुआ है। धोबन ने घी में दाल डाली, तब धोबी हंस रहा है। ढोल ढमाके ताल पर स्वामी कूद-कूदकर नाच रहा है। छोले माह की दाल में हींग रचा हुआ है।

गद्दी—ओ हला बीरूआ! अजूंह धारा-धारा षीणा लगी पेउ, कई-का जांधरा बखी चली गान्हे! इठी ता गुजारा नह् भूणा। भेड्डा बकरिये कै खाणा इड़ी?

मूंखु— हउं बी लग्या थू ऐते की कांगड़े हारी गान्हे। धणा जो घाह् अह् जो लुगड़ु खिचड़ू मिलिये ही गाल्हा। सजना बीरू! अब पहाड़ों पर बर्फ गिरनी आरम्भ हो गई है। कहीं मैदानी भाग में चल पड़ते हैं। यहां निर्वाह नहीं हो पाएगा। यहां भेड़ बकरियां क्या खाएंगी?

मूंखु— मैं भी बोलने वाला था। इस वर्ष कांगड़ा की ओर जाते हैं। धण (भेड़-बकरियों का समूह) के लिए घास और हमें लपसी खिचड़ी तो मिल ही जाएगी। सब गाने लगते हैं—

धारा लगेया सीणा बो गद्दया धारा लगेया सीणा हो।
छिकणु लाणा रीणा बो मित्तरा जांधर जाणा जीणा हो।

सर्दी के दिन समाप्त हो गए। जान्धर से लौटकर कामा गद्दी धण लेकर लाहुल चले गए हुए हैं। इधर गद्दन भरमौर के किसी अपने गांव बैठी सोचती हुई गुनगुना रही है—

भेड़े केरे पाल्हणुआ! तू घरे ईये बो
घरे किय्हां ईणा भेड़ा सो लगूरा ही
भेड़ा जो तेरी बराव मारे घरे इये हो

घरे किय्हां ईणा — कंढी कुत्ती है सोरी हो
तेरी कुत्ती जो बराघ मारे घरे इये हो।
छड़ बो भरोरी बबरूए मैं किल्लिये खाणी बो ?
घड़ा भरोरा पाणिये मैं किल्लिये पीणा बो ?
घर भरीरा गभरूए मैं किल्लिये सूणा हो ?
भेड़े केरे पाल्हणुआ, घरे ईये बो।

हिन्दी अनुवाद—ऐ भेड़ों को चराने वाले ! घर आ जा। घर आ जा। घर कैसे आऊं भेड़ें बच्चों को जन्म दे रही हैं। तेरी भेड़ों को बाघ मारे घर आ जाओ। घर कैसे आऊं कंढी (नाम) कुत्तिया सूई हुई है। तेरी कुत्तिया को बाघ मार दे घर आ जाओ। टोकरी तली रोटियों से भरी है क्या मैंने अकेले ही खानी है ? पानी से घड़ा भरा हुआ है क्या मैंने अकेले ही पीना है। नौजवानों से घर भरा हुआ है क्या मैं अकेली सोऊंगी ? अतः भेड़ों का पालन करने वाले घर आ जा।

सम्भवतः ईश्वर ने सुन ली या समय हो जाने से गद्दी, कामा, घर लौट आए। एक दिन ऐसे हुआ कि गद्दन के पेट में ज़ोर का दर्द होने से वह रोने चीखने लगी। सब घबरा गए। कभी कुछ, कभी कुछ किया जाने लगा, कोई प्रभाव न होता देखकर गद्दी कामा से बोला—काम्या हला ! बुरी भुई (ओ सेवक ! बुरा हुआ)

गद्दन—मेरिये मउ। प्राण निकेहणा लगै। ओ इजिये ! कहाँ गच्छं ? बड़ी पीड़ भुई बो। (मेरी मां ! प्राण निकलने लगे हैं। ओ मां ! कहां जाऊं ? बहुत दर्द हो रहा है।) रोती हुई— बड़ी भुई बो बड़ी भुई। मेरेया कक्का ! झुली हा। ए भूणा कै लग्या ? बढी गो बुन्हला पेट मेरा (बहुत हो रही, बहुत हो रही है। निचला पेट मेरा कट रहा है।) तड़फती है।
रुआंसी दृष्टि से देखकर गद्दी भूंखुआ भाईया ! तू कसकी चेले भोपे जो ता सद। होर असु करी बी कै सकनुं। इठी न बैद न डाकटर। दौड़ी गच्छ मेरा कामा।

भाई भूंखु ! तू किसी चेले भोपे (झाड़ फूंक वाले) को तो बुला। और हम कर भी क्या सकते हैं। यहां न तो कोई वैद्य है न डॉक्टर। मेरे कर्मठ। दौड़ जाओ।

भूंखु — बझिया। हउं हांढु गारड़ी जो लेई इनूं। बड़ा कारीगर हा सो। (मालिक मैं हांढु (नाम) गारडी (मन्त्रों द्वारा झाड़ने वाला) को ले आता हूं। कामा चला जाता है। थोड़ी देर बाद एक बूढ़े को जिसके हाथ में मोर पंखों का झाड़ू सा है, एक तारा उठाए, पीठ पर झोला लिए, साथ लेकर आता है। गारडी गद्दन को देखकर मोर पंख झाड़ू को लेकर रुगणा शरीर को झाड़ता हुआ—

आछला ते बाछला दो सकी भैणा
अपु बिचे गल्ला लगी लाणा
सरय्हां दा साग, बैठक दिनियां
धूप दिनियां धुखाई हां।

धारा कन्धारा दी सब बूटड़ियां
खेलदी नचदी आई नां
बज-बज रंडे ढोलकिये, सौदागर बेटा आया न
बूटी खेलदी-खेलदी आईया
(स्मर बदलकर पुनः)
आए मेरे बांबरु वाले हां
आये मेरे बांबरू आए नां।
हसदे खेलदे आए नां
हसदे खेलदे आए नां
धुण-धुण धुणका लगदी तां
बूटी बाके आंदी तां।
(बज भई बज)
आए मेरे बांदरु वाले हां (गारडी कांप उठा)

पुनः बैठकर

डैण कुंडे दिया धारा विसा
भोगदा जे थिया नां
धारा बो कंधारा विसा
तू भोगदा जे थिया न
डैणी करदी डैवाव, ओ भी निर्विस।
वांदरे दी हड्डी पाई, ओ भी निर्विस।
बिल्ले दी हड्डी पाई, ओ भी निर्विस।
मण्हु दा मांस षाया, ओ भी निर्विस।
कीड़े दा मांस पाबा, ओ भी निर्विस।
बूटी बो कबूटी पाई, ओ भी निर्विस।
विस्सा सौ बार निर्विस ॥

हिन्दी रूपान्तर—आछला, बाछला दो सगी बहनें हैं जो परस्पर बातें करने लगी हैं। मैं खाने के लिए सरसों का साग और बैठने के लिए आसन देती है। धूप धुखा देती हूं। छोटे बड़े पहाड़ों की सब जड़ी बूटिया खेलती नाचती आई हैं। ए रांड ढोलक बजाने लग जा, सौदागर बेटा आ गया है। बूटियां खेलती-खेलती आ गई हैं। डाली (जिन्हें जादू टोना किया गया हो) नाचती हुई आ गई है। स्वर बदल कर पुनः छोटे-छोटे बालों वाले पहुंच गए हैं, मेरे बन्दर आ गए हैं। हंसते खेलते आ गए हैं। डालियों को तब धुण-धुण (कंपन) उत्पन्न हो गई और बूटी जब बोलने लग पड़ी। बजाओ भई, बजाओ। मेरे छोटे-छोटे बालों वाले आ गए हैं गारड़ी कांपने लगता है, फिर

कांपने के उपरान्त बैठकर झाड़ता हुआ—हे विष तू डैण कुंड (डलहौजी के पास एक ऊंचा पर्वत) पर्वत पर मजे लेता रहा है। छोटे बड़े पर्वतों पर तू रहता है। यदि डायने डायण मन्त्र करती हैं तो बिना प्रभाव वाला हो जाए। यदि बन्दर की हड्डी डाली गई हो, बिल्ले की हड्डी, मनुष्य का मांस, सर्प मांस, अच्छी, बुरी जड़ी कुछ भी डालकर टोना किया गया है अथवा खिलाया गया हो वह सब कुछ सैंकड़ों बार विषहीन हो जाए।

रुगणा के गिर्द पर्दा किया गया। एक अन्य स्त्री उसके साथ बिठाई गई। थोड़ी देर बाद बच्चे के रोने की आवाज़ होती है। चारों ओर खुशी भर जाती है थोड़ी देर बाद पर्दा हटाया गया, गद्दन बालक लिए बैठी है। सब प्रसन्नता से फूल कर गाना गाते हुए नाचते हैं—

मेरेया होलरुआ ओ, तेरी नानियें
सुणेंया तां, वजन बधाईयां नां।
मेरेया होलरु आ ओ, तेरे नाने सुणेया तां,
तां वजन बधाईयां नां।
मेरेया हालरुआ ओ, तेरे चाचे सुणेया तां,
तां वजन बधाईयां नां।
मेरेया गोभरुआ ओ, तेरे मामे सुणेया तां,
तां वजन बधाईयां नां।
मेरेया फूलणुआ ओ, तेरी मासिए सुणेया तां,
तां वजन बधाईयां नां।

—ओ मेरे होनहार! तेरी नानी सुनेगी तब बधाईयां बजेंगी। जब तेरे नाना जी सुनेंगें तब बधाईयां बजेंगी। मेरे होनहार! जब तेरे चाचा जी सुनेगे तब बधाईयां बजेंगी। जब तेरे मामा जी सुनेगे तब बधाईयां बजेंगी। मासी सुनेगी तब भी बधाई बजेगी।

गाते हुए सब नाच रहे हैं। बधाई गान गूंज रहा है। सबके बीच में नारद नाचते हुए बड़े भले लग रहे हैं। लोग मनोविनोद का आनन्द लूट रहे हैं। गद्दी, गद्दन, कामा धीरे-धीरे जिस घर से आए थे उसी ओर बढ़ रहे हैं। सखियां गायकों में से उठकर सामने आ गई। जब गद्दी परिवार स्थान खाली कर गया सखियों ने स्थान सम्भाल लिया और लोकगीत शुरू करके नाचना आरम्भ कर दिया। उधर लोग यह सोच रहे हैं– देखते हैं अब कौन से वर्ग का स्वांग आता है। जब तक सुबह नहीं हो जाती, वर्ग गत स्वांगों का क्रम चलता ही रहता है। एक-एक कलाकार अनेक भूमिकाएं निभाया करता है, उसी लहजे और बोल चाल में। प्रकृति प्राप्त अभिनय अत्यन्त आनन्द कर तथ्य लेकर सामने आता है। दिखावे वाली कोई बात नहीं।

इस गाथा को लोक चम्पु या यात्रा नाटक कहा जाए तो भी अनुपयुक्त नहीं होगा। क्योंकि गद्य-पद्यमयी रचना चम्पु कहलाता है और चलते-फिरते या किसी यात्रा के मध्य किया

गया अभिनयात्मक कार्य यात्रा नाटक हुआ करता है । लोगों (दर्शकों) के कानों ने फिर सुना —

घरे नी जुड़दा सुका तमाकु,
बाहर पेड़ा मलेया दा ।
पता नी लगदा करे कै समाजु,
गल अपणी पर अड़ेया दा ।।

घर पर सूखा तमाकु नहीं मिलता, घर से बाहर जाने पर मला हुआ पेड़ा होता है । समाज में क्या हो रहा है कुछ पता नहीं, अपनी ही बात पर अड़ा हुआ है । गाना सुनते ही लोग बड़ी उत्सुकता से किसी दूसरे आने वाले स्वांग की प्रतीक्षा करने लगे ।

जिला भाषा अधिकारी,
चम्बा जिला चम्बा,
हि. प्र.

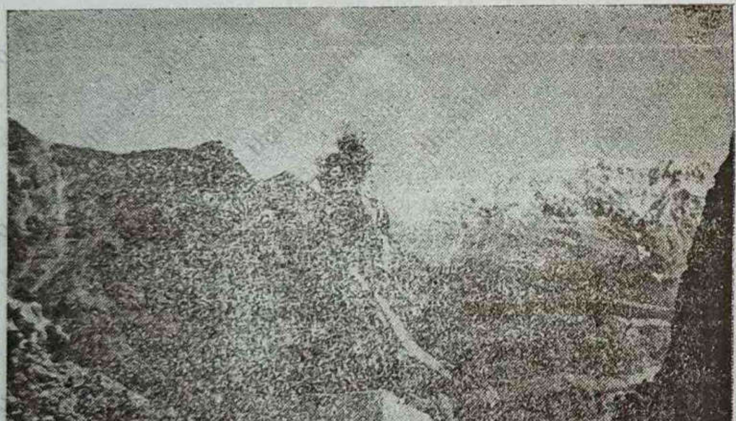

लातो देवता

किन्नौरी की सांस्कृतिक शब्दावली

○ प्रो० डी डी. शर्मा

महत्व—संस्कृति शब्द का परिवेश बड़ा व्यापक है, इसके अन्तर्गत किसी भी मानव समुदाय की सम्पूर्ण जीवन पद्धति, चिन्तन प्रक्रिया, भौतिक एवं बौद्धिक उपलब्धियों का समावेश हो जाता है। इसलिए किसी संस्कृति के स्वरूप एवं क्षेत्र का निर्धारण करने के लिए उसकी पृष्ठभूमि का समाकलन भी आवश्यक होता है, क्योंकि सभी संस्कृतियों में स्थानगत तथा कालगत विभिन्नताओं के लिए पर्याप्त अवकाश हुआ करता है। यही कारण है कि संस्कृति का न कोई निर्धारित मानदण्ड ही होता है और न कोई परिधिकृत स्वरूप ही।

इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि किसी सम्पूर्ण संस्कृति का निर्माण न तो किसी काल विशेष में होता है और न किसी मानव विशेष के द्वारा ही। यह एक दीर्घकालीन प्रक्रिया का परिणाम होता, जिसमें सन्दर्भगत सांस्कृतिक समुदाय सम्मिलित रूप से अपने दीर्घकालीन अनुभवों, सफलताओं एवं असफलताओं, उपलब्धियों व हानियों के आधार पर वहां की परिस्थितियों के अनुरूप उस समुदाय विशेष के सदस्यों के लिए कतिपय सामाजिक व्यवस्थाओं, आचार-विचार, तीज-त्यौहार, व्रत- संस्कार, पूजा-पाठ, नृत्य-संगीत आदि के माध्यम से रूपायित करने का प्रयास करता है। इसलिए किसी समाज विशेष के संन्दर्भ में यह भी सम्भव है कि अपने स्थिर एवं व्यवस्थित जीवन यापन की प्रक्रिया को अपनाने से पूर्व उसने अपने अतीत के अस्थायी जीवन के सांस्कृतिक उपादानों में देश तथा काल के अनुरूप कई बार परिवर्तन एवं परिवर्धन किया हो। साथ ही यह भी सम्भव है कि अपने अस्थिर जीवन काल में उसने अपने सम्पर्क में आने वाले अन्य समाजों से भी अनेक सांस्कृतिक उपादानों का आदान किया हो। यही कारण है कि साँस्कृतिक स्तर पर हमें अनेक समाजों में समरूप सांस्कृतिक तत्त्वों के दर्शन होते हैं जोकि अतीत में घटित पारस्परिक आदान-प्रदान के परिणाम हो सकते हैं।

उपर्युक्त अनुमान के आधार पर कहा जा सकता है कि किसी सांस्कृतिक इकाई का जो वर्तमान रूप हमें आज दिखाई देता है वह उस समाज के कर्णधारों के युगों के अनुभवों, परीक्षणों एवं उसे व्यवस्थित रूप देने के सतत् प्रयत्नों का परिणाम हो।

इस प्रसंग में यह भी ध्यातव्य है कि संस्कृति के विकास की प्रक्रिया बड़ी सूक्ष्म एवं जटिल होती है। इसका निर्माण उन अनेक छोटे-छोटे उपादानों से होता है जिन्हें संस्कृति तत्व कहा जाता है। ये तत्व स्थूल एवं पार्थिव भी हो सकते हैं तथा सूक्ष्म एवं अपार्थिव भी। संस्कृति विशेष के विश्लेषण के लिए इन्हें पृथक-पृथक रूप में भी लिया जा सकता है और समवेत रूप में भी क्योंकि संस्कृति अपने आप में कोई निरपेक्ष वस्तु नहीं, वह तो उन अनेक संस्कृति तत्वों का एक संकुल होता है जिसे संस्कृति संकुल (cultural complex) कहा जाता है, पर साथ ही यह भी उल्लेख्य है कि यह संकुल उन सांस्कृतिक उपादानों का एक व्यवस्थित संकुल मात्र न होकर इन सब में अन्तर्निहित एक सामंजस्य युक्त प्रणाली की परिणति होता है।

भाषा और संस्कृति :— किसी भी संस्कृति के अभिव्यंजक तत्व चाहे रूपात्मक हों या अरूपात्मक, भौतिक हों या आध्यात्मिक सभी का भाषा के साथ अभिन्न सम्बन्ध होता है, क्योंकि उनका संकेत-बोध भाषा के माध्यम से ही हुआ करता है। इसके अतिरिक्त भाषा ही वह तत्व होता है जिसके माध्यम से इन तत्वों से अभिप्रेत संकल्पनाओं को एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तान्तरित किया जाता है।

इतना ही नहीं, अपितु भाषा के सभी रूपों में उसको बोलने वाले लोगों के समुदाय की संस्कृति का किसी न किसी रूप में प्रतिबिम्बन पाया जाता है। उसकी शब्दावली में ही विभिन्न सन्दर्भों के शब्दों की सत्ता या अभाव, उनके व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ, व्याकरणिक कोटियों की स्थिति वाक्य रचना की सरलता या जटिलता आदि ऐसे तत्व हैं जोकि भाषिक समुदाय विशेष की संस्कृति को समझने में हमारी सहायता कर सकते हैं। आवश्यकता केवल उन्हें पकड़ने एवं परखने वाली दृष्टि की होती है। इनके समाज भाषाशास्त्रीय विश्लेषण से किसी भाषिक समुदाय के लोगों के ऐतिहासिक सम्बन्धों तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक विशेषताओं पर पर्याप्त विश्वसनीय प्रकाश डाला जा सकता है। ऐतिहासिक अनुसन्धान के क्षेत्र में भाषा ही एक ऐसा साधन है जिसके द्वारा किसी समुदाय विशेष के अतीत के अज्ञात सम्बन्धों के विषय में प्रामाणिक लेखा-जोखा प्राप्त किया जा सकता है। विश्व के विभिन्न भागों में फैले हुए जिप्सियों का मूल स्थान भारत का पश्चिमोत्तर प्रदेश था। इसका पता उनकी भाषा के रूपों के विश्लेषण से ही सम्भव हो सका है। इसी प्रकार हिमाचल प्रदेश के लाहुल तथा किन्नौर क्षेत्रों में कभी निषाद, कोल, मुण्डा आदि जातियों के लोगों का आवास था इसकी निर्विवाद पुष्टि यहां की भाषाओं में इन जातियों के भाषिक तत्वों की प्रचुर मात्रा में पाये जाने से होती है।

प्रसिद्ध भाषाशास्त्री आर०सी० ट्रेंच के अनुसार भाषा किसी राष्ट्र या समुदाय के लोगों की नैतिकता का मापक यंत्र है जोकि पक्के एवं विश्वसनीय रूप से उसके उत्थान और पतन की सूचना देने में समर्थ है। भाषा के माध्यम से किसी समुदाय विशेष के स्वरूप को समझने का अर्थ है-उन लोगों की जीवन पद्धति को ऐसे रूप में देखना जहां कि वह अपनी असलीयत को छिपाये बिना अपने वास्तविक रूप में हमारे सामने उपस्थित होते हैं, ऐसे अनेकों रीति-रिवाजों तथा धार्मिक

विधियों एवं अनुष्ठानों को, जोकि अन्यथा अतीत की वस्तु बन चुके होते हैं, उस समुदाय में प्रचलित सांस्कृतिक शब्दावली के माध्यम से देखा जा सकता है, (1979-81)। इसी प्रकार उसके ये शब्द भी स्वर्णाक्षरों में अंकनीय हैं कि प्रायः लोगों के द्वारा प्रयोग में लाया जाने वाला एक शब्द उनकी वास्तविक स्थिति, आचार-विचार एवं चिन्तन प्रक्रिया पर इतना गहरा प्रभाव डालता है जितना कि इस विषय पर लिखा गया एक विशालकाय ग्रन्थ भी नहीं डाल सकता (वही पृ० 82)।

किसी जन समुदाय के भाषिक प्रयोगों में क्योंकर उसकी सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण सर्वाधिक मात्रा में पाया जाता है, इसका प्रमुख कारण यह है कि भाषा स्वभावतः रूढ़िवादी (Conservative) होती है और अपने पिछले परम्परागत रूपों को संजोये रखने के प्रति उसका एकान्त मोह होता है। यही कारण है कि कई बार किसी भाषाई समुदाय के ढांचे का बाहरी रूप बदल जाने पर भी उसका अपना भाषिक ढांचा नहीं बदलता। फलतः कई बार किसी शब्द विशेष से संकेतित अर्थ के बाह्य रूप के पूर्णतः या अंशत परिवर्तित हो जाने पर भी उसमें अन्तर्निहित उसका वह मूल रूप पूर्णतः सुरक्षित रहता है जिसका कि वह मूलतः संकेत बोध कराया करता था। उदाहरणार्थ देखा जा सकता है कि उन भारतीय समाजों में जिनमें कि कभी मामा की लड़की के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर सकना शास्त्रसम्मत तथा समाज सम्मत था (या है), वहां श्वसुर के लिए मामा स्थानीय तथा सास के लिए मामी स्थानीय शब्दावली का प्रयोग करना सर्वथा संगत था, किन्तु देखा जाता है कि सामाजिक तौर पर उक्त प्रथा के समाप्त हो जाने पर भी बन्धुत्व वाची शब्दावली में इन सम्बन्धों को व्यक्त करने के लिए उसी परम्परागत शब्दावली का व्यवहार चलता रहता है। फलतः आज किसी प्रथा के न रहने पर भी तत्सम्बन्धी भाषिक प्रयोगों के आधार पर अतीत में उसके प्रचलित होने का अनुमान सहज ही लगाया जा सकता है।

स्वरूप :— सांस्कृतिक शब्दावली के स्वरूप को समझने से पूर्व उस अन्तर को समझ लेन भी आवश्यक है जोकि उसे सामान्य भाषिक अभिव्यक्तियों से पृथकत्व प्रदान करता है। सांस्कृतिक शब्दावली तथा सामान्य शब्दावली के इस अन्तर को संक्षेप में साहित्य शास्त्र की परिभाषिक शब्दावली में प्रचलित दो शब्दों—'परिवृत्ति सहत्व' तथा 'परिवृत्यसहत्व' के द्वारा पारिभाषित किया जा सकता है। अर्थात परिवृति सहत्व का अर्थ हैं किसी शब्द के स्थान पर उसी अर्थ के अभिव्यंजक शब्दान्तर के प्रयोग की सम्भाव्यता तथा परिवृत्य सहत्व का अर्थ है ऐसी सम्भाव्यता का अभाव। इस आधार पर कहा जा सकता है कि सामान्य वाग्व्यवहार में किसी भाषिक अभिव्यक्ति के लिए उस अर्थ के अभिव्यंजक किसी भी का शब्द प्रयोग किया जा सकता है किन्तु सांस्कृतिक शब्दावली के विषय में ऐसा करना सम्भव नहीं, क्योंकि उसमें शब्द विशेष के साथ उससे सम्बद्ध सम्पूर्ण क्रियाएं एवं संकल्पनाएं जुड़ी होती हैं, जिनका भाव बोध हमें मात्र उसी शब्द के प्रयोग से हो सकता है। यथा यद्यपि व्रत उपवास तथा अनशन सभी में 'भोजन न करने' का भाव निहित है किन्तु जहां सामान्य शब्दावली में कोई व्यक्ति 'मैं आज खाना नहीं खाऊंगा' कह सकता है, वहां इसी अर्थ के लिए वह 'आज मेरा उपवास है' नहीं कह सकता, और न व्रत या उपवास के लिए 'खाना न खाने'

का ही प्रयोग कर सकता है। सभी भाषाओं में सामान्य तथा सांस्कृतिक शब्दावली से सम्बध अनेक शब्द ऐसे भी हो सकते हैं जोकि समध्वनि वाले (homophonous) हों ऐसी स्थिति में इन्हें परखने की सरलतम कसौटी यही है कि सामान्य प्रयोग से सम्बद्ध शब्द का प्रयोजन अपना कोशीय अर्थ प्रदान करना मात्र होता है अतः उसके स्थान पर उसके पर्यायवाची शब्दों में से किसी का भी प्रयोग किया जा सकता है किन्तु सांस्कृतिक सन्दर्भ में ऐसा नहीं किया जा सकता है अर्थात् केवल उसी का प्रयोग अभिप्रेत होता है, यथा सामान्य भाषिक प्रयोग में हम 'जल दो' के स्थान पर जल के पर्यायवाची, पानी, तोय, नीर आदि का प्रयोग कर सकते हैं (यथा फूलों को जल दो या पानी दो) किन्तु सांस्कृतिक सन्दर्भ में हम 'जलदान' के स्थान पर 'पानीदान' शब्द का प्रयोग नहीं कर सकते। अतः द्वितीय सन्दर्भ में 'जल' शब्द सांस्कृतिक शब्दावली का अंग बन जाता है जबकि प्रथम सन्दर्भ में वह सामान्य शब्दावली का अंग है। स्मर्तव्य है कि सभी भाषाओं में ऐसे शब्दों की संख्या पर्याप्त मात्रा में हुआ करती है। यहां पर इसका संकेत मात्र ही किया जा सकता है।

क्षेत्र :—जैसा कि ऊपर संकेत किया गया है कि सांस्कृतिक शब्दावली हमारी जीवन पद्धति एवं चिन्तन प्रक्रिया की एक अभिन्न अंग है। अतः हमारे सामाजिक एवं व्यक्तिगत जीवन के सभी पक्ष इसके विषय क्षेत्र के अन्तर्गत आ जाते हैं। एक सामाजिक प्राणी होने के नाते कोई भी मानव अपने समुदाय विशेष में रहता हुआ जन्म से मरण पर्यन्त जो कुछ भी अपने लिए या अपने समाज के सदस्यों के लिए करता है वह सभी उसकी संस्कृति के क्षेत्र में समा जाता है। उस समाज के सदस्यों के क्रियाकलापों को एक विशिष्ट रूप प्रदान करने तथा उन्हें परस्पर एक दूसरे के साथ जोड़े रखने वाले तत्वों के लिए जो ध्वनि रूप (शब्द) निर्धारित किये गये होते हैं वे सभी उस समुदाय की सांस्कृतिक शब्दावली के अंग होते हैं। अर्थात् सांस्कृतिक शब्दावली के अन्तर्गत प्रमुख रूप से वह शब्दावली आती है जिसका सम्बन्ध व्यक्ति के जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अथवा तदुपरान्त भी किये जाने वाले धार्मिक संस्कारों या सामाजिक विधि विधानों, हमारे हर्षोल्लास एवं दुःख विषाद को अभिव्यक्ति देने वाले कायिक-वाचिक (नृत्य-संगीत) के विविध रूपों के अभिव्यजंक भाषिक तत्त्वों, जन विश्वासों के अनुरूप किये जाने वाले विविध प्रकार के व्रतों एवं अनुष्ठानों से सम्बद्ध क्रिया कलापों के अभिव्यंजक भाषिक रूपों, ऋतुत्सवों (मेलों) तथा देवोत्सवों (पर्वो एवं त्यौहारों) के विभिन्न पक्षों के अभिव्यंजक पदों, सामाजिक संगठनों एवं बन्धुत्व के निर्देशक भाषिक रूपों से हुआ करता है।

जैसा कि ऊपर बतलाया गया है कि सांस्कृतिक शब्दावली का क्षेत्र बहुत विस्तृत है, सभी क्षेत्रों की सम्पूर्ण शब्दावली का विश्लेषण किसी एक लेख में सम्भव नहीं हो सकता। अतः हम यहां पर इस प्रसंग को स्पष्ट करने के लिए सीमित क्षेत्रों से सीमित शब्दावली का ही विवेचन करेंगे।

सामाजिक संगठनों से सम्बन्ध शब्दावली:—सामाजिक संगठन के स्तर पर हमें किन्नौरी में ऐसे तीन शब्द मिलते हैं, जोकि एक प्रकार से किन्नर समाज के समस्त ढांचे की रूप-रेखा प्रस्तुत करने

में पूरी तरह समर्थ हैं। ये शब्द हैं— खेल, खानदान और बिरादर तथा इससे सामाजिक ढांचे का जो रूप अभिव्यक्त होता है वह इस प्रकार है।

खेल – यह किन्नरों की वह सामाजिक संगठनात्मक इकाई है जिसका गठन उन कतिपय खानदानों की इकाईयों पर आधारित है जोकि सामाजिक स्तर एक दूसरी के समकक्ष होती हैं। इसका विशेष महत्त्वपूर्ण स्थान इन संघटकों के बीच वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना के प्रसंग में हुआ करता है। अर्थात् इसकी परिधि में किये गये वैवाहिक सम्बन्ध ही सामाजिक दृष्टि से पूर्णतया मान्य हुआ करते हैं। अपने खेल से बाहर अथवा अपने से निम्न स्तर के खेल के सदस्यों के साथ स्थापित वैवाहिक सम्बन्धों को अनुचित तथा बिरादरी के लिए अपमान जनक समझा जाता है। इसके अतिरिक्त पारस्परिक सहयोग तथा सम्पूर्ण खेल के हितों की रक्षा की दृष्टि से भी 'खेल' संगठन की महत्त्वपूर्ण भूमिका पायी जाती है।

खेल संगठन की दृष्टि से सम्पूर्ण किन्नर समाज तीन वर्गों में विभक्त पाया जाता हैं-इनके नाम हैं (1) ओरङ खेल, (2) मोरङ या ओरङ मच् खेल, (3) वाजा खेल, जो कि सामाजिक स्तरीकरण की दृष्टि से क्रमश : उच्च, मध्य एवं निम्न समझे जाते हैं।

खानदान : यह खेल से छोटी तथा उसकी एक संघटक इकाई है। किन्नर समाज में उपर्युक्त तीनों खेलों का पुनः कई बहिर्वैवाहिक (exogamous) वर्गों में उपविभाजन किया जाता है जिन्हें खानदान कहा जाता है। खेलों के समान ही इनका भी श्रेणीबद्ध स्तरीकरण हुआ करता है अर्थात् उच्च खेल के संघटक खानदान उच्चस्तरीय, मध्यम के मध्यम स्तरीय तथा निम्न के निम्न स्तरीय समझे जाते हैं। यह एक प्रकार का सगोत्रीय वर्ग है। अतः इसमें अन्तर्विवाह नहीं हो सकता है किन्नौरी में एक नाम का केवल एक ही खानदान हो सकता है तथा इसके प्रवर्तक मूल पुरुष को 'जिल्लङ्' कहा जाता है।

बिरादर : यों तो इस शब्द का विकास 'भ्रातृ' शब्द से हुआ है तथा पहलवी एवं फारसी में इसके इस विकसित रूप का अर्थ भी 'भाई' है, किन्तु किन्नर समाज में इसका प्रयोग एक विशिष्ट सामाजिक संगठन के लिए किया जाता है। अर्थात् इस भाषा में यह उस सामाजिक संगठन का बोधक है जिसके अनुसार विभिन्न पारिवारिक इकाइयों के लोग अपने आपको एक पितृवंशीय परम्परात्मक संगठन के साथ संयुक्त करते हैं। अर्थात् किन्नरों के सामाजिक संगठन में इसकी स्थिति परिवार से उच्चतर इकाई के रूप में होती है तथा इसके सदस्य परस्पर रक्त सम्बन्ध से सम्बद्ध होते हैं जिनका उद्‌भव कतिपय पीढ़ी पूर्व एक ही मूल दम्पति से हुआ होता है। पितृ परम्परा से इन सबका परस्पर निकट रक्त सम्बन्ध होने के कारण इस संगठन के सभी सदस्यों को समान रूप से जन्म-मृत्यु आदि से सम्बद्ध शौचाशौच का पालन करना होता है। सामाजिक संगठन की लघुतम इकाई है परिवार, जिसका अपना विशेष रूप होता है।

पनढङ्—परिवार के लिए किन्नौरी का शब्द है पनढङ्, जोकि मूलतः रसोई घर का संकेतक है।

रसोई घर तथा परिवार के लिए एक ही शब्द का प्रयोग किया जाना इस बात का बोधक है कि इस समाज में संयुक्त परिवार प्रथा ही परिवार की आधारशिला रही है। जब परिवार संयुक्त रूप से रहेगा तो निश्चित ही उसका रसोई घर भी एक ही होगा। फलतः परिवार एवं रसोई घर एक दूसरे के पर्यायवाची बनकर रह गये।

परां--परिवार के अर्थ में एक अन्य शब्द भी प्रचलित है, परां, जिसकी परिधि पनढङ् की अपेक्षा किंचित् विस्तृत होती है। इसके अन्तर्गत परिवार का वह रूप आता है जिसमें कि पारिवारिक दृष्टि से एक ही परिवार के अंगभूत सदस्य रोटी-पानी की दृष्टि से पृथक-पृथक इकाइयों का निर्माण करते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि परिवार सम्बन्धी शब्दों के माध्यम से ही हमें पारिवारिक संगठन के स्वरूप का भी बोध हो जाता है। किन्नरों की सांस्कृतिक शब्दावली के अंग होने के नाते इनका परिगणन 'परिवृत्यसहत्व' की कोटि में किया जा सकता है।

गोयने या गोरितस – 'सांस्कृतिक शब्दावली के प्रसंग में यह शब्द भी काफी महत्त्व का है, इसकी व्युत्पत्ति 'गोयङ्' शब्द से हो सकती है जिसका अर्थ होता है, धूप-दीप, तथा पूजा-आराधना के द्वारा देवताओं को आमंत्रित करना। किन्नर समाज में केवल गृह स्वामिनी को ही यह अधिकार प्राप्त है। अतः इसका अर्थ हो गया है परिवार का मुख्य सदस्य। इस सम्बन्ध में यह भी स्मरणीय है कि गोयङ् का अधिकार केवल प्रथम विवाहिता पत्नी को ही होता है अन्य किसी को नहीं। इस प्रकार इस शब्द के अभिप्रेत अर्थ के विश्लेषण से अनुमान लगाया जा सकता है कि बहुपति प्रथा वाले इस समाज में प्रथम विवाहिता पत्नी को कितना सम्मान दिया जाता है।

उपर्युक्त समाजिक संगठनों पर दृष्टिपात करने पर यह बात सहज ही स्पष्ट हो जाती हैं कि किन्नर समाज का निर्माण पितृसत्तात्मकता की आधार शिला पर किया गया है, जोकि आर्य जाति की एक मूल परम्परा रही है। किन्तु इसके साथ ही इस समाज की कतिपय रीतियों में परिलक्षित मातृ-सत्तात्मक तत्वों की उपस्थिति से ऐसा प्रतीत होता है कि इन दोनों परम्पराओं में एक का समावेश कालान्तर में किसी भिन्न प्रकार की सांस्कृतिक परम्पराओं का अनुपालन करने वाले वर्ग के साथ हुए सांस्कृतिक सम्मिश्रण के फलस्वरुप हुआ होगा क्योंकि बन्धुत्ववाची शब्दावली पर पृथक रूप से लिखा जा चुका है (विपाशा ८८) अतः यहां पर कतिपय धार्मिक संस्कारों तथा सामाजिक प्रथाओं से सम्बद्ध शब्दावली पर विचार किया जायेगा।

विवाह :— धार्मिक संस्कारों की दृष्टि से किन्नर समाज में जिन दो संस्कारों का विशेष महत्व है वे हैं विवाह और मृत्यु। इनमें से विवाह के कई रूप पाये जाते हैं तथा उन सभी को सामाजिक मान्यता भी प्राप्त है। प्रमुख रूप से इसे ५-६ रूपों में मान्यता दी गई है जिन्हें यहां की भिन्न-भिन्न बोलियों में भिन्न-भिन्न नामों से पुकारा जाता है। किनौरिया नुस्कद के अनुसार इनके नाम व रूप इस प्रकार हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि विभिन्न प्रकार की

वैवाहिक परम्पराओं के बोधक ये नाम किन्नरों की सांस्कृतिक शब्दावली के अभिन्न अंग हैं तथा विवाह विशेष के प्रकार विशेष संकेतक भी।

जनेटङ्/जनेकङ्:—इस शब्द का सम्बन्ध जान्या (बारात) से है। व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका विकास संस्कृत के 'जन्या' शब्द से माना जा सकता है। जिसका अर्थ होता है 'दुल्हन' या 'दुल्हन की सखी' क्योंकि इस विवाह में बारात ही एक ऐसा तत्त्व है जोकि इसे अन्य प्रकार के विवाहों से पृथकत्व प्रदान करता हैं अतः इसे 'बाराती विवाह' कहना सर्वथा संगत है। बारात के सम्बन्ध में यह बात विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि किन्नर समाज में बारात का आयोजन वर तथा वधू दोनों की ओर से किया जाता है। इसमें भी वधू पक्ष से आने वाली बारात का अनुपात वर पक्ष की ओर से आने वाली बारात से तीन गुना अधिक होता हैं।

न्योटङ् मीरङ् :— विवाह का दूसरा प्रकार है 'न्योटङ् मीरङ्' जिसका शब्दार्थ है दो व्यक्तियों के साथ, (न्योटङ (दो)+मी (व्यक्ति)+रङ् (साथ)। यह जनेकङ् का सरल एवं संक्षिप्त रूप है। इसमें वर की और से केवल दो व्यक्ति, माज़ोमी (मध्यस्थ) तथा एक अन्य वधू के घर जाते हैं तथा एक दिन वहां रह कर दूसरे दिन वधू को साथ लेकर आ जाते हैं। घर में आकर 'बेलडिङ्' (देखा आगे) की रस्म की जाती है तथा विवाह की विधि सम्पन्न समझी जाती है।

गान्धर्व विवाह या चौर्य विवाह:—यह एक प्रकार का प्रेम विवाह है तथा भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में अलग-अलग नामों से संकेतित किया जाता है। इसमें प्रेमी तथा प्रेमिका घर से भागकर चोरी से विवाह कर लेते हैं। किनौरीया नुकस्द में इसे 'दमचल शिश' कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ होता है 'ठीक सम्बन्ध होना' कूनोचारङ क्षेत्र में इसे ही 'सेम्बा थुनशा' (दिल निल कर) पूह-नमग्या में नामा कुया (चोरी से भगाना) तथा हङ्-रङ् में नामा कूजा (चौर्य विवाह) कहा जाता है। लाहुल की बोलियों में इसे कूजा ब्या या कुमइबागस्तोन (चौर्य विवाह के नाम से पुकारा जाता है।

अपहरण विवाह :—यह भारतीय स्मृति शास्त्रों में वर्णित राक्षस विवाह के समकक्ष है। किनौरया-नुस्कद में इसे दारोश डबडब कहा जाता है जिसका शाब्दिक अर्थ है, बलपूर्वक घसीटकर ले जाना। रोपा क्षेत्र में इसे ही 'तेम खुतमिग' अर्थात् 'वधू उठाकर ले जाना' तथा सुङनम में न्यमशा डापङ् कहा जाता है। तीनों ही शब्दों में बलपूर्वक उठाकर ले जाने अथवा अपहरण करने का भाव बहुत स्पष्ट है।

हारी :— किसी जीवित पति का स्त्री के द्वारा अपने विवाहित पति या पतियों से विच्छेद लेकर पुर्नविवाह की विधि को हारी या हार कहा जाता है। किन्नर समाज में इस प्रकार का विवाह बन्धन सर्वथा मान्य एवं समाज सम्मत हुआ करता है। हारी शब्द का सम्बन्ध भी हरण या अपहरण से ही हो सकता है।

इस प्रकार देखा जा सकता है कि ये भाषिक प्रयोग किस प्रकार स्वयं अपने अर्थों के माध्यम से ही विवाह के विभिन्न रूपों की अभिव्यक्ति किया करते हैं। इसी प्रकार विवाह की प्रक्रिया से

सम्बन्धित अनेक सांस्कृतिक शब्द हैं जोकि तत् तत् प्रक्रिया विशेष तथा अनुष्ठान विशेष का अर्थ बोध स्वयं अपने शाब्दिक प्रयोगों के द्वारा कराते हैं। इनमें से कुछ शब्द इस प्रकार हैं:—

सेईनिङ कुन्नुः - इसका शाब्दिक अर्थ है 'रिश्ता पुकारना'। यह विवाह के अवसर किया जाने वाला एक लोकाचार है। जैसा कि इसके नाम से ही व्यक्त होता है, इसमें वर तथा वधू को उनके सम्बन्धियों से परिचित कराया जाता है और वे उन्हें बन्धुत्ववाची शब्दों (देवर, जेठ, ससुर, सास साला आदि) से पुकार कर नमस्कार (ढालरिङ्) करते हैं।

बेलडिङ्:—यह विवाह से सम्बद्ध एक महत्वपूर्ण रस्म है जो कि बारात वर के घर लौटने के दूसरे दिन मनाई जाती है। इसमें घर की छत पर सभी रिश्तेदारों की उपस्थिति में वधू के समक्ष वर तथा उसके सभी भाईयों को एक पंक्ति में बैठा कर उन सभी के सिर पर मामा के द्वारा लाई गई एक पगड़ी बांधी जाती है, जिसे 'पाग लिक्शिमु' (पगड़ी पहनना) भी कहा जाता है। यह प्रतीकात्मक रूप से इस बात की भी संकेतक होती है कि इस विवाह में सभी सहोदर भाई समान रूप से सांझेदार हैं। किन्नर परम्परा में विधिवत् विवाह केवल बड़े भाई का ही होता था तथा अन्य भाई सामाजिक स्वीकृति से ही उसमें सांझेदार होते थे। इसकी पुष्टि इस बात से होती है कि बेलडिङ् की रस्म परिवार में होने वाले सर्व प्रथम विवाह के अवसर पर ही की जाती है, अन्यों पर नहीं। इससे यह भी माना जा सकता है कि भाईयों में पृथक्-पृथक् विवाह की प्रथा का विकास बाद में हुआ। प्राचीन काल में केवल एक ही विवाह होता था।

डोलङ् चिमः – यह भी विवाह से सम्बद्ध एक लोकाचार है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'नमस्कार करना'। इसका पूरा रूप है 'युमेद (सास) डोलङ् चिम' अर्थात् 'सास को नमस्कार करना'। इसके अनुसार जब लड़का विवाह के पश्चात् प्रथम बार ससुराल जाता है तो वहां सर्व प्रथम उसे प्रणाम पूर्वक सास के चरणों में कुछ अर्पित करना होता है, इसके उपरान्त ही वह उससे कुशल-क्षेम पूछती है।

बियोशिमिग्: - इसका शाब्दिक अर्थ है 'अलग होना, विदा होना'। यह भी एक रस्म है जिसमें कि वधू उ के साथ आये हुए बन्धुजनों को अपने घर से विदा करती है।

बिठो पोनोः बिठो-पोनो का शाब्दिक अर्थ तो ज्ञात नहीं हो सका, पर है यह भी विवाह से सम्बद्ध सांस्कृतिक शब्दावली का एक अभिन्न अंग ही। यह एक प्रकार का लिखित या अलिखित इकरार नामा होता है जो कि वर के माता-पिता की ओर से विवाह के अवसर वधू के लिए किया जाता है। इसके अनुसार वे लोग उसे कुछ ऐसी अचल सम्पति देने का वचन देते हैं जिसे कि वह किसी प्रकार के संकट की स्थिति में अपना जीवन यापन करने के लिए उपयोग करने की अधिकारिणी होती है।

इजितः किन्नर संस्कृति में 'इजित' का सम्बन्ध चौर्य विवाह, अपहरण विवाह तथा हार विवाह

के साथ है। वैसे तो मूलतः यह शब्द अरबी-फारसी कुल का 'इज्जत' ही है, जिसका अर्थ होता है मान, सम्मान आदि। किन्तु किन्नर भाषा में इसका प्रयोग विशिष्ट सन्दर्भों में तथा एक विशिष्ट अर्थ में किया जाता है। सन्दर्भ ऊपर बता दिए जा चुके हैं तथा अर्थ है 'मान हानि की क्षति पूरक धन राशि'। क्योंकि समझा जाता है कि किसी लड़की को भगाकर या बल पूर्वक उठाकर ले जाने से माता-पिता का अपमान या मान हानि होती है। अतः ऐसा करने वाले व्यक्ति को इसके दण्ड के रूप में आर्थिक दण्ड देना होता है जो इजित की राशि कहलाती है। ऐसा होने पर कोई व्यक्ति मध्यस्थ बनकर व्यक्ति की आर्थिक स्थिति के अनुसार इसका निर्णय करता है। इसी प्रकार पत्नी को तलाक देने अथवा किसी की पत्नी को फुसलाकर ले जाने वाला व्यक्ति भी समाज में अपराधी होता है, तथा अपने इस कृत्य से उसके माता-पिता अथवा पति की मान-हानि करता है। ऐसे व्यक्ति को भी अपने अपराध के लिए सम्मान की क्षति-पूर्ति के रूप में इजित की राशि देनी होती है।

शिङ् टक्शिङ् या शिङ् टग्-टग्:—विवाह से सम्बद्ध सांस्कृतिक शब्दावली का एक अन्य महत्वपूर्ण शब्द है 'शिङ् टग्-टग्' जिसका शाब्दिक अर्थ है 'टहनी या तिनका तोड़ना'। किन्तु किन्नरों की सांस्कृतिक शब्दावली के सन्दर्भ में इसका अर्थ होता है 'विवाह-विच्छेक', जो कि विवाह-विच्छेद की उस प्रक्रिया का प्रतीक है जिसके अनुसार विच्छेद चाहने वाले पति-पत्नी समाज के गण्य-मान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में एक तिनके को दो भागों में तोड़कर अपने सम्बन्ध–विच्छेद को पूर्णता प्रदान करते हैं। स्मरणीय है कि अन्य जन-जातियों के समान ही किन्नर समाज में भी विवाह को स्त्री तथा पुरुष के बीच किया जाने वाला एक समझौता समझा जाता है जिसे प्रतिकूल परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर बिना किसी धार्मिक प्रतिबन्ध को तोड़ा जा सकता है।

राजीनामा:—विवाह विच्छेद से ही सम्बद्ध एक अन्य शब्द है राजीनामा, यों तो ये शब्द अरबी-फारसी मूल का है तथा इसका अर्थ 'सहमति'। किन्तु किन्नर शब्दावली में इसका अर्थ-संकोच हो जाने से अर्थ हो गया है 'विवाह-विच्छेद सम्बन्धी सहमति' अर्थात् विवाह विच्छेद। एक भाषा के शब्द दूसरी भाषा में जाकर किस प्रकार अपने प्रयोग क्षेत्र का संकोच या विस्तार कर लेते हैं इसे किन्नर भाषा की सांस्कृतिक शब्दावली के रूप प्रयुक्त होने वाले शब्दों-'इजित' तथा 'राजीनामा' में देखा जा सकता है।

दूरेस-गौरचङ्: विवाह से सम्बद्ध शब्दावली के और भी अनेक रूप हैं किन्तु हम इस लेख में उन सब का विवरण न देकर केवल दो शब्दों का और उल्लेख करेंगे जो कि किन्नरों की किसी विशिष्ट सांस्कृतिक परम्परा के अवशेष प्रतीत होते हैं। मुझे अभी तक कोई ऐसा समाज या भाषा नहीं मिली है जिसमें कि 'ससुराल' के लिए लड़की तथा लड़के के सन्दर्भ में भिन्न-भिन्न शब्दों का प्रयोग किया जाता हो। किन्तु किन्नरों की सांस्कृतिक शब्दावली में यह स्थिति पाई जाती है। इसके अनुसार पुरुष के सन्दर्भ में 'ससुराल' के लिए प्रयुक्त किया जाने वाला शब्द है 'दूरेस' तथा

स्त्री के सन्दर्भ में गौरचङ्'। कभी-कभी गौरचङ् के स्थान पर 'पराया किम' (घर) या खाली 'परायो' का भी प्रयोग किया जाता है। पुरुष क्योंकर उसके साथ दूरत्व का सम्बन्ध व्यक्त करता है तथा स्त्री क्यों उसे अपना घर न मानकर पराया घर मानती है एवं इसके पीछे किन सामाजिक परम्पराओं का हाथ है यह स्पष्ट नहीं।

मृतक संस्कार: —यद्यपि अब बाह्य जगत के साथ खुला सम्पर्क हो जाने के कारण मृतक क्रियाओं पर भी बाह्य प्रभाव पड़ने लगा है तथा मृतक का अन्तिम संस्कार अग्निदाह के द्वारा किया जाता है किन्तु अतीत काल में इसके कुछ अन्य रूप भी थे। इसका पता उनके लिए प्रयुक्त होने वाले भाषिक प्रयोगों से चलता है। किन्नौरी में मृतक के अन्तिम संस्कार के लिए जिन तीन शब्दों की सत्ता मिलती है वे हैं (1) फुकन्त (अग्निदाह करना), (2) डुबन्त (जल प्रवाह करना) तथा (3) भखन्त (भक्षित कराना)। इनमें से भखन्त तिब्बती परम्परा है। जिसके अनुसार मृतक के शरीर को चील-कौवों के भक्षण के लिए पर्वत शिखर पर छोड़ दिया जाता था। यह तिब्बती परम्परा थी जिसका अनुसरण केवल हङरङ क्षेत्र में ही किया जाता था, किन्तु अब यह प्रथा सर्वत्र समाप्त हो गयी है। इसी प्रकार डुबन्त प्रथा भी अब नाम शेष रह गयी है।

मृत्यु सम्बन्धी लोकाचारों के विषय में उपरि किन्नौर तथा निचले किन्नौर के क्षेत्रों में पर्याप्त अन्तर पाया जाता है। यहां पर केवल कुछेक ऐसी प्रथाओं का ही उल्लेख किया जायेगा जोकि अपने नाम से ही उसके स्वरूप की अभिव्यंजना करती है। डॉ० बंशीराम शर्मा ने अपने ग्रन्थ 'किन्नर लोक साहित्य' (1976:315-20) में ऐसी अनेक प्रथाओं का विवरण दिया है।

दुम रातिङ् :— इसमें 'दुम' का अर्थ है 'एकत्र होना' और रातिङ् का अर्थ है 'रात्रि' अर्थात् 'इकट्ठा होने की रात'। यह वह आने वाली रात्रि होती है जिस दिन कि व्यक्ति की मृत्यु होती है। इसमें गांव के लोग तथा सम्बन्धी उस रात्रि को मृतक के घर में एकत्र होकर शोक मनाते हैं तथा परिवार के लोगों को शोक के शमन के लिए तरह-तरह से सान्त्वना देते हैं।

श्रोम काफरा :— इसका शब्दार्थ है 'मार्ग-वस्त्र'। जब मृतक को श्मशान घाट के लिए ले जाया जाता है तो अर्थी के आगे आगे दो व्यक्ति एक 'राम-रामी' वस्त्र को टेढ़ा फैलाकर चलते हैं। इसका प्रयोजन है मृतात्मा का मार्ग दर्शन।

थूनिङ् :— इसका अर्थ है 'दाल रोटी को मिलाकर उठाना'। मृतक को श्मशान घाट की ओर ले जाने के उपरान्त घर में दाल या सब्जी के साथ एक रोटी को कौवों के निमित्त घर की छत पर डाल दिया जाता है। विश्वास किया जाता है कि कौवों के माध्यम से यह भोजन मृतात्मा को प्राप्त हो जाता है।

दुङ्खङ् :— चिता के अर्थ में प्रयुक्त होने वाला यह शब्द तिब्बती मूल का है। तदनुसार इसका अर्थ होना चाहिए 'शंख (दुङ्) गृह (खङ्)। चिता को शंख ग्रह कहने के पीछे क्या अभिप्राय

रहा होगा यह स्पष्ट नहीं ।

जिनस्त्रेक्च :— शव को चिता में स्थापित कर देने के बाद लामा उसके निकट एक दीप जलाकर तथा साथ में अलग से अग्नि प्रज्वल्लित करके मंत्रपाठ पूर्वक हवन करता है जिसे 'जिनस्त्रेक्च' कहा जाता हैं । इसकी व्युत्पत्ति जिन (दान) सेग्वा (जलाना) से की जा सकती है जोकि मृतक के निमित्त किये गये हवन का संकेत बोध कराता है ।

छण्टचामो :— किन्नौर में स्मृतियों में विहित धार्मिक अनुष्ठानों के अनुपालन के अभाव में शव दाह के उपरान्त कोई श्राद्ध तर्पण, दान-दक्षिणा जैसा कर्म अथवा नियत दिनों में क्रिया कर्म जैसा कोई धार्मिक अनुष्ठान नहीं होता । सुविधानुसार दस बारह दिन के बाद किसी दिन भी एक बन्धु को भोज करा दिया जाता हैं जिसे 'छण्टचामो' कहा जाता है । इसका व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ क्या है इसका तो पता नहीं किन्तु इस दिन बन्धु - बान्धवों को आमन्त्रित कर खूब भोजन व शराब दी जाती है और रात्रि को एक शोक गीत गाकर शोकावधि की समाप्ति की जाती है और इसके बाद अन्य प्रकार के गीतादि गाकर उत्सव मनाया जाता है । उपरि किन्नौर के क्षेत्रों में इसे 'छोत्पा' कहा जाता हैं ।

शुगुलामा :- इसका शब्दार्थ है 'कागज जलाना' । यह अनुष्ठान उपरि किन्नौर में 'छोत्पा' के दिन किया जाता है । इसमें पुरोहित लामा मृतव्यक्ति का नाम एक कागज पर लिखकर उसे सब लोगों की उपस्थिति में अग्निसात् कर देता है । विश्वास किया जाता है कि इसके बाद आत्मा उस घर को छोड़कर चली जाती है ।

लाहुल में इसे 'शुगुरोटी' (पट्टनी) अथवा 'शुगुरोची' (गाहरी) कहा जाता है । इसका भी शब्दार्थ है 'कागज जलाना' । वहां पर इसके लिए लामा लोग कागज पर मानवाकृति बनाते हैं । उसके हाथ में एक डंडा बनाया जाता है उस पर 'आ' (आत्मा) लिखा जाता है । इस कागज को पुनः एक तीराकृतिक लकड़ी की तीली पर लगाकर मंत्रवाह के साथ जोर-जोर से मृतक का नाम पुकार कर अग्नि को अर्पित किया जाता है । इसके पीछे धारणा यह है कि उस कागज पर आलिखित 'आ' आत्मा का प्रतीक होता है तथा उसे अग्निसात् कर देने से आत्मा को निर्वाण प्राप्त हो जाता है । पट्टन में लामा शुगुरोटी में कागज के टुकड़ों पर मृतक का नाम लिखते हैं, फिर जोर से उसका नाम पुकार कर उन्हें अग्नि में डाल देते हैं ।

धार्मिक अनुष्ठानों तथा क्रिया कलापों से सम्बद्ध सांस्कृतिक शब्दावली के अतिरिक्त सामाजिक क्रिया कलापों से सम्बद्ध शब्दावली का भी एक बहुत बड़ा भाग है जोकि शब्दों के माध्यम से ही क्रिया विशेष के स्वरूप एवं प्रयोजन की अभिव्यक्ति करने में सर्वथा समर्थ हो सकता है । विस्तार भय से हम अब इनका विस्तृत विवरण न देकर दिशा निर्देश के लिए कतिपय शब्दों का अर्थ मात्र निर्दिक करेंगे जोकि इस प्रकार है ।

जेठोङ्, कानचोङ् :— बहुपति प्रधान किन्नर समाज में पैतृक सम्पत्ति के वितरण के सम्बन्ध में

कुछ विशेष समाज सम्मत प्रथाओं का अनुपालन किया जाता है। जेठोङ् तथा कान्चोङ् का सम्बन्ध भी इसी से है। इसके अनुसार सम्पत्ति विभाजन में सबसे छोटे भाई को विशेष अधिकार प्राप्त नहीं होता है। फलतः ज्येष्ठतम को भूमि का उत्तम भाग प्राप्त होता है जिसे जेठोङ् कहा जाता है तथा कनिष्ठतम को पैतृक भवन जिसे कांन्चोङ् कहा जाता है।

पोल्टुस : विधवा अथवा किसी स्त्री से उत्पन्न अवैध सन्तान जिसका किसी की सम्पत्ति पर कोई अधिकार नहीं होता।

पुगलङ् :—अविवाहित कन्या से उत्पन्न अवैध सन्तान, इसका भी किसी सम्पत्ति में कोई अधिकार नहीं होता।

किमशू :— गृह देवता या इष्ट देव।

ग्रोक्च :— इसका अर्थ है देवता का प्रवक्ता। यह किन्नौर की एक अति प्राचीन परम्परा है जोकि अब तक बराबर चली आ रही है। यह व्यक्ति देवता विशेष के संकेतों की व्याख्या तथा उसके निर्देशों का बखान करता है।

छिरोनिङ्स :— इसका अर्थ है देवता का इतिहास, जो कि उस देवता सम्बन्धी उत्सवों एवं मेलों के अवसर पर ग्रोकच् के द्वारा बखान किया जाता है। देवता का यह इतिहास मौखिक परम्परा से पिता से पुत्र को प्राप्त होता रहता है।

गोरासङ् :— भवन निर्माण की समाप्ति पर किया जाने वाला अनुष्ठान।

प्रासनी :— नये घर में प्रवेश के समय किया जाने वाला अनुष्ठान।

पोरेस्तङ् :— देवालय की छत डालने का अनुष्ठान।

कहने की आवश्यकता नहीं कि भाषा वैज्ञानिक दृष्टि से किया गया उपर्युक्त प्रकार का अध्ययन किन्नर लोक संस्कृति के अतीत पर प्रकाश डालने में बड़ा सहायक हो सकता है।

सन्दर्भग्रन्थ व पत्र पत्रिकाएं

1. **Mamgain, M.D. Himachal Pradesh District. Gazetteers, Kinnaur, Shimla, 1971.**

2. **Raha, M.K. 'The Khandan System of Kinnaura of Western Himalayas' in The Himalayan Heritage (ed), Delhi 1987.**

3. **शर्मा, बंशीराम 'किन्नर लोक साहित्य' ललित प्रकाशन, बिलासपुर (हि० प्र०) 1976।**

4. **शर्मा, डी. डी. 'लाहुली समाज और संस्कृति' (प्रकाशनाधीन) किताबघर, दिल्ली, 1988।**

5. — — — 'लाहुल के मृतक संस्कार' मानव, (वर्ष 13, अंक 1) एथनोग्राफिक एण्ड फोक कल्चर सोसाइटी, लखनऊ, 1985।

6 — — — 'लाहुल की वैवाहिक परम्पराएं' **संस्कृति** (वर्ष 12, अंक 2) शिक्षा मन्त्रालय, भारत सरकार, दिल्ली, 1985।

7. — — — किन्नर संस्कृति में खश आग्नेय तत्व, **विपाशा** (वर्ष-3 अंक-15) शिमला, 1987।

8. — — — 'बन्धुत्ववाची शब्दावली के परिप्रेक्ष्य में किन्नर संस्कृति' **विपाशा** (वर्ष-4) 1988 (स्वीकृत)

9. — — — A Sociolinguistic Analysis of Kin ship Terms in a Polyandrous Society', The Eastern Anthropologist (Vol. 37 No. 2) 1984.

10. — — — 'Linguistic Approach to Cultural Analysis Man & Life (Vol. 12, No. 1—2) 1986.

11. — — — Kinship organization of the Palyandrous Lahulas, in The Himalayan Heritage, Gian Prakashan, Delhi, 1987.

पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़

गोबिन्द सागर झील में जलमग्न प्राचीन मन्दिर षणमुखश्वर मन्दिर के बाहर जड़ी हुई सूर्य प्रतिमा

लाहुली लोकगीत,

गुरु घण्टा पाद के बिहार के जीर्णोद्धार का कथा-गीत

O के० अंगरूप लाहुली

हिमाचल प्रदेश के लाहुली जनजातियों का इतिहास पुस्तकों के पन्नों एवं सरकारी अभिलेखों को टटोलने से नहीं, अपितु वहां के लोक साहित्य के अध्ययन करने से विदित हो सकता है। यद्यपि अंग्रेज सरकार (1846 ई०) आने से पूर्व यह क्षेत्र कई वर्षों तक कुल्लू रियासत के अधीन रह चुका था, तथापि उन दिनों की प्रशासनीय विधाओं का विवरण, आज न तो कुल्लू राज-दरबार में उपलब्ध होता है और न ही किसी अन्य अभिलेखागार में। ऐसी अवस्था में लाहुल के इतिहास को ज्ञात करने के लिए एक मात्र स्त्रोत वहां के लोकगीत, लोककथा तथा लोकगाथा और लोकसाहित्य ही रह जाता है। जिनमें निश्चित ही वहां की प्राचीन संस्कृति और इतिहास का तत्व सन्निवेश मिलता है। प्रस्तुत कथात्मक गीत सुप्रसिद्ध गुरू घण्टापाद का बिहार, जिसे संक्षेप में गुरु घण्टार और यहां की गहारवादी की बोली में गन्धालय कहते हैं, यहां के प्राचीनतम बिहारों में से है। जिसका लद्दाख की तग-ना गोन्पा के प्रधान लामा टशी तम्फेल के देख-रेख में पुनोद्धार करवाया गया था। लामा टशी तम्फेल तत्कालीन बौद्ध वास्तु कला के एक पण्डित थे बिहार के पुनरोद्धार करने का प्रयोजन एवं स्थानीय लोगों की नैसर्गिक बातों पर विश्वास आदि की कथा इस गीत के माध्यम से निम्न प्रकार से आख्यायित की गई है—

तांदी घुशाड़ेरि ए साला बी-गूड़ी जी ओ।
तांदी घुशाड़ेरि ए साला बी-गूड़ी जी ओ॥

उन्नीसवीं शताब्दी के अन्तिम चरण की बात है कि एक समय लाहुल घाटी के तन्दी और गौशाल नामक दो गांव वालों के खेतों की सारी फसल अनावृष्टि के कारण सूख गई तो इससे उक्त दोनों गांवों में हा-हा कार मच गया।

ए तांदी घुसाड़ा ए डुणा—चूणा कीती ओ।
ए लाम्बा गुरू ए शादी कारी आणी ओ॥

इस अकाल से उत्पन्न संकट से उबरने के लिए दोनों गांव वालों ने आपस में विचार-विमर्श

किया, और दुर्भिक्ष पड़ने के कारणों को जानने के लिए ज्योतिष शास्त्र के एक मर्मज्ञ लामा अर्थात् गुरू को आमन्त्रित करले आए।

ए लाम्बा गुरू ए पोथी ना हेरी ओ।
ए पोथी अन्दूरा ए गुरू घण्टाड़े डोशे ओ ॥

ग्रह नक्षत्र की गति का ज्ञाता लामा, जिन्हें लोग आदर भाव में 'गुरू' कहकर पुकारते थे। उन्होंने पचांग आदि ज्योतिष शास्त्र की तमाम पोथियों को छांट मारा। पोथियों में सूखा पड़ने का कारण घण्टार गोन्पा के ध्वस्त होकर दीर्घकाल तक उपेक्षित पड़े रहने का दोष यानि अनिष्ट फल निकला।

ए गुरू घण्टाड़ा ए नावे गोन्पा मेंगून्दे ओ।
ए त्रिजी कोठी ए डुणा—चूणा कीती ओ ॥

ज्योतिषी ने दोनों गांव वालों से कहा कि पोथी के अनुसार गुरू घण्टा-पाद के बिहार वासी देव परिवार एक नयी गोन्पा की चाह कर रहे हैं। अतः आप लोग उनकी इस मांग को यथाशीघ्र पूरा करने का प्रयत्न करें।

ज्योतिषी की बात को सुनकर तन्दी, वरपा तथा गौशाल आदि तीनों कोठियों के लोग इक्ट्ठे हुए और विचार-विमर्श करने लगे।

ए त्रिजी लम्बूरा ए के-लांगा कोठी ओ।
ए नेगी हरिचन्दा ए पू—छुणी लागी ओ।

विचार विमर्श के पश्चात् तीनों कोठियों के नम्बरदार अपनी फरियाद को लेकर सदर-मुकाम केलंग गए। जहां नेगी यानि ठाकुर हरिचन्द (मृत्यु 1902 ई०) जो उस समय अंग्रेज़ सरकार की ओर से अवैतनिक दण्डाधिकारी द्वितीय नियुक्त थे। वे उन नम्बरदारों से पूछने लगे कि:—

ए त्रिजी लम्बूरा ए किजी कामे आए ओ।
ए त्रिजी लम्बूरा ए जू-बाबा दीती ओ ॥

हे! तीनों कोठियों के नम्बरदार, आप लोग यहां किस प्रयोजन के लिए आए हैं? इस पर उन तीनों नम्बरदारों ने ठाकुर हरिचन्द जी से एक साथ उत्तर के रूप में कहा।

ए तांदी घुशाड़ेरि ए साला बीगूड़ी जी ओ।
ए गुरू घण्टाड़ेरि ए डोश्रा ना होए ओ ॥

हे! साहिब, इस वर्ष तन्दी और गौशाल गांव के खेतों की सारी फसल अनावृष्टि के कारण चौपट हो गई है। ज्योतिषी के अनुसार इसका कारण जगत प्रसिद्ध गुरू घण्टा-पाद के बिहार के

ध्वस्त होकर पड़े रहने का दोष (अनिष्टफल) है।

ए गुरू घण्टाड़ा ए नावे गोन्पा मंगून्दे ओ ।
ए लोड़ी साहिबा ए बीणी बीजा लोड़ी ओ ।।

अब गुरू घण्टा-पाद के बिहार वासी देव परिवार एक नयी गोन्पा की मांग कर रहे हैं। हम लोग गोन्पा का पुनरोद्धार करना चाहते हैं। अतः हे! साहिब, इसके लिए हम आप से दो चार चुनिन्दा दरख्त की फरियाद करते हैं।

ए नेगी हरिचन्दा ए का-गूता लीखी ओ ।
ए यो कागूता ए टशी ताम्फेल लामा तांए ओ ।।

विद्वान न्यायाधीश ठाकुर हरिचन्द एक गंभीर एवं दूरदर्शी प्रशासक थे। उन्होंने सोचा कि बिहार की मुरम्मत का काम सब कोई नहीं कर सकता। ऐसा न हो कि जीर्णोद्धार के नाम से बिहार की प्राचीनता ही नष्ट हो जाए। उस समय लद्दाख के तग-ना नामक बिहार के प्रधान लामा टशी तम्फेल ही एक मात्र बौद्ध वास्तु कला के मर्मज्ञ थे। ठाकुर हरिचन्द ने गोन्पा के जीर्णोद्धार का काम उन्हीं की देख-रेख में करवाना अच्छा समझा। अतः उन्होंने मान्य लामा के नाम एक पत्र लिखकर, तथा पत्र को नम्बरदारों को देते हुए कहा कि – यह पत्र तग-ना गोन्पा के लामा टशी तम्फेल के लिए है। इसे यथाशीघ्र लद्दाख पहुंचाने की व्यवस्था करो।

ए जोड़ी माणू ए ला-दूकेना त्यारी ओ ।
ए जोड़ी माणू ए ला-दूकेना भेजी ओ ।।

पत्र को ग्रहण करते हुए तीनों नम्बरदारों ने ठाकुर हरिचन्द की आज्ञा को 'सिर-माथे' कह कर, एक युगल पुरुष को लद्दाख भेजने की तैयारी की, और इस प्रकार एक जोड़ा आदमी पत्र के साथ लद्दाख भेजा गया।

नोट: पत्र में लिखा था कि-लाहुल की प्राचीनतम गोन्पा जो महा सिद्धाचार्य गुरु घण्टा-पाद के नाम से निर्मित थी। जीर्ण-शीर्ण होकर कई वर्षों से गिर कर पड़ी हुई है। फलतः प्रदेश में कुछ आनिष्ट घटनाएं घट रही हैं। अब हम इस का पुनरोद्धार करना चाहते हैं। आप बौद्ध वास्तु कला के पण्डित हैं। अतः हम आप से इस शुभ कार्य के लिए सहयोग की अपेक्षा करते हैं। जिससे बिहार की प्राचीनता एवं इस की अमूल्य कलाओं का संरक्षण हो सके। अतः आप इस महत्वपूर्ण कार्य को सफल बनाने के लिए लाहुल पधार कर हमें कृतार्थ करेंगे।

ए जोड़ी माणू ए ट्रशी ताम्फेल बारे ओ ।
ए गुरु ट्रशी ताम्फेल पू-छुणी लागी ओ ।।

ठाकुर हरिचन्द के पत्र को लेकर मानव का वह जोड़ा, लामा टशी तम्फेल के घर यानि

आश्रम जो प्रसिद्ध तग-ना गोन्पा में ही स्थित था, पहुंचा और सर्व मान्य गुरु लामा टशी तम्फेल जो बड़े ही व्यवहार कुशल व्यक्ति थे। उन दोनों से पूछने लगे कि

ए जोड़ी माणू ए कीजी कामे आए ओ।
ए यो कागूता ए कगूतेरितांए आए ओ॥

हे मानव के जोड़े, आप दोनों यहां किस काम के लिए आए हैं? इस पर वह युगल पत्र वाहक पत्र को प्रस्तुत करते हुए कहने लगे कि ये पत्र और कागज़ात हम आपके लिए ले आए हैं। वे यह भी कहने लगे कि

ए यो कगूता ए हरिचन्दे लीखी ओ।
ए यो कगूता ए हरिचन्दे लीखी ओ॥

इसे लाहुल के वज़ीर ठाकुर हरिचन्द जी ने आपके लिए लिखा है।

ए गुरु ट्रशी ताम्फेल लवे जोगु त्यारी ओ।
ए जोड़ी जबाशी ए संगे आणा त्यारी ओ॥

मान्य गुरु लामा टशी तम्फेल ने वज़ीर साहिब ने पत्र को अच्छी तरह पढ़ा और तुरन्त लाहुल को चलने के लिए तैयार हो गये। मठीय प्रशासन ने प्रधान लामा के साथ एक जोड़ा जब्क्ष-छी यानि दो सेवकों को भेजने की व्यवस्था की।

ए आण्डी ना फेरी ए कोलोंगा कोठी ओ।
ए शेमा-ठाकूरा ए जला-कून्दा आए ओ॥

लामा टशी तम्फेल लाहुल क्षेत्र से अपरिचित थे। अतः वे ठाकुर हरिचन्द जी का अता-पता पूछ कर सदल-बल कोलोंग कोठी यानि राज भवन में पहुंचे। लामा के आगमन की खबर मिलते ही राज परिवार में उल्लास छा गया तथा मालकिन शेमा (सर्वप्रिय) और ठाकुर हरिचन्द उन की आगवानी के लिए मुख्य द्वार तक आए।

ए गुरु ट्रशी ताम्फेल घण्टा-ड़े आए ओ।
ए गुरु ट्रशी ताम्फ़ेल हूकू-मा दीती ओ॥

श्री ठाकुर हरिचन्द से बिहार के गिरने और उससे उत्पन्न संकट का वृत्तांत सुनने के पश्चात् लामा टशी ताम्फेल गुरु घण्टा पाद के बिहार गन्धालय पहुंचे तथा वहां पहुंच कर बिहार के जीर्णोद्धार काम आरम्भ करने के लिए मिस्त्री, मज़दूर तथा अन्य कार्यकर्त्ताओं को आज्ञा दी।

ए गुरू घण्टारि ए नावे गोन्पा त्यारी ओ।
ए जीमी भूमि ए हरे-द्रूबा फेरी ओ॥

जीर्णोद्धार का कार्य प्रारम्भ करने की देरी थी कि गुरू घण्टा-पाद का बिहार, एक नयी गोन्पा के रूप में सज-धज कर तैयार हो गई। परिणामतः देव परिवार प्रसन्न हो गए और समय पर बारिश गिराने लगे। इससे बिहार के आस-पास एवं आंचल में स्थित तन्दी और गौशाल वालों की सूखी जमीन एवं भूमि पुनः हरि-भरी दूर्वा आदि घास से भर गई।

ए तांदी घुशाड़ेरि ए साला-ना फेरी ओ।
ए तांदी घुशाड़ेरि ए शा-गूना कीती ओ॥

इस प्रकार तन्दी और गौशाल वालों की फसल भी पुनः फलने-फूलने लगी तो तन्दी और गौशाल वाले प्रसन्न होकर शुभ-शकुन के लिए घण्टार गोन्पा के देव परिवारों की पूजा-अर्चना करने लगे।

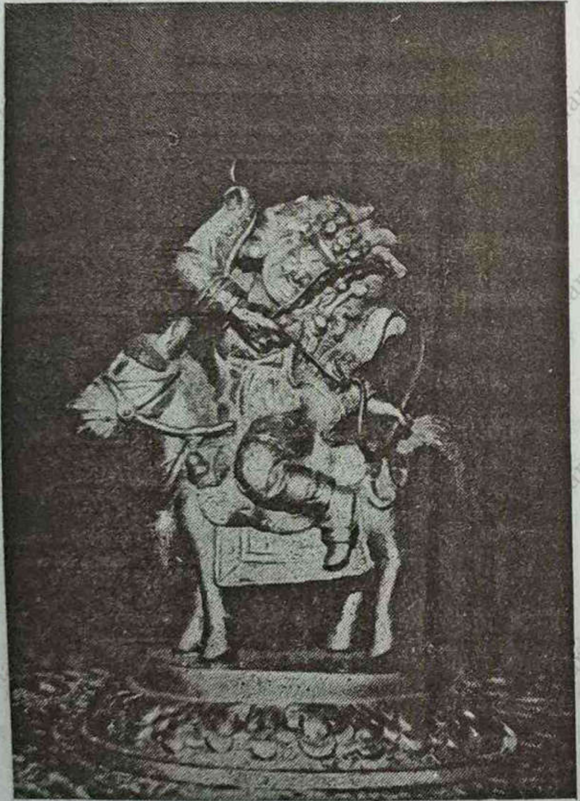

पलदन लामो (काली) पीतल निर्माणकाल 16वीं शताब्दी शाशुर गोन्पा (लाहुल)

चम्बा रूमाल

O हरिश्चन्द्र राय

यूं तो रूमाल प्रत्येक व्यक्ति के रोज़ाना काम में आने वाले उस छोटे से कपड़े के टुकड़े को कहते हैं जिस का आकार वर्ग रूप होता है और कभी-कभी वृत्त रूप भी हो सकता है। परन्तु चम्बा रूमाल का नाम लेते ही हमारे मानस पटल पर जो बिम्ब उतरता है वह साधारण उपयोग की यह मामूली सी वस्तु न हो कर एक आलंकारिक कला कृति का होता है जो बारीक या मोटे कपड़े का वर्गाकार वह फलक होता है जिस के दोनों ओर एक ही रूपांक की बिम्ब प्रतिबिम्ब रूप से रंगीन रेशमी धागों द्वारा कढ़ाई की गई हो, जो चम्बा के अतिरिक्त अन्यत्र कहीं नहीं होती। चम्बा के इन रूमालों की कुछ ऐसी निजी विशेषताएं हैं जिन के कारण चम्बा रूमाल महिला शिल्प की एक महत्वपूर्ण कलात्मक विधा के रूप में जानी जाने लगी है। त्यौहारों, उत्सवों, पर्वों आदि में देवी देवताओं की अर्चना और भोग सामग्री या विवाह आदि संस्कारों के समय उपहार सामग्री को ढांपने के लिए इस प्रकार के रूमालों का उपयोग कई शताब्दियों से होता चला आया है। यद्यपि इन का प्रचलन पिछले समय में समस्त पश्चिमी हिमाचल प्रदेश में रहा था परन्तु इस कलात्मक शिल्प के जो सर्वाधिक नमूने इस समय मिले हैं उनका उद्‌गम स्त्रोत चम्बा को ही कहा जा सकता है। प्रामाणिक रूप से तो इस आलंकारिक शिल्प का सब से पहला उदाहरण सोलहवीं शताब्दी ईसवी में ही प्राप्त होता है परन्तु यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस का प्रचलन इस से भी बहुत पहले रहा होगा तभी यह 16 वीं शताब्दी तक आते-आते इतना विकसित शिल्प हो चुका था कि उसने एक कला का रूप ग्रहण कर लिया था।

हाथ से बुने कपड़े पर रंगीन धागों से काढ़े गए रूमालों के उदाहरण 18 वीं शताब्दी में तो अनेक मिलते हैं। कांगड़ा चित्र शैली में बना एक चित्र लखनऊ संग्रहालय में संग्रहीत है। जिस में कुछ ब्राह्मण कन्याएं भगवान कृष्ण के लिए जो भोग सामग्री लिए जा रही हैं वह रंगीन कढ़ाई के रूमाल से ढकी हुई दिखाई गई हैं। इस से यह सिद्ध तो होता ही है कि इस प्रकार के रंगीन कढ़ाई किए हुए रूमालों का प्रचलन तत्कालीन समाज में अवश्य रहा होगा जिस के कारण कांगड़ा का चित्रकार उसकी कल्पना कर सका। उस समय इस प्रकार की रंगीन कढ़ाई केवल रूमालों में ही नहीं अपितु दैनिक जीवन की अन्य अनेक उपयोगी वस्तुओं में भी हुआ करती थी, और इस का प्रचलन इस पर्वतीय प्रदेश में ही नहीं वरन् समस्त उत्तर भारत में था विशेषत: सिंध, पंजाब, उत्तर प्रदेश,

हरियाणा, राजस्थान और गुजरात। कपड़े के बने पंखे, टोपियां, चोलियां, तकिए के गिलाफ, चौपड़ की बिसात, ओढ़ने बिछाने की चादरें, चंदोवे, ओढ़नी आदि प्रकार की सभी वस्तुओं पर रंगीन धागों की कढ़ाई नाना प्रकार के रूपांकों को लेकर उन दिनों बहुत हुआ करती थी इस शिल्प को महिलाओं का ही कार्य समझा जाता था क्योंकि पुरुष वर्ग जीवनोपार्जन के कार्य में इतना व्यस्त रहता था और महिला वर्ग को घर गृह और बच्चों की देखभाल के अतिरिक्त बाहर का कुछ भी कार्य नहीं रहता था इस कारण जहां पुरुष वर्ग अपना रिक्त समय चौपड़, ताश, शराब आदि में बिताता था, वहां स्त्री वर्ग अन्यान्य उपयोगी एवं आलंकारिक शिल्प और कलाओं में. जिन से न केवल उपयोगी वस्तुओं का उत्पादन ही सहज रूप में हो जाता था अपितु गृह सौन्दर्य में भी वृद्धि होती थी। कढ़ाई, बुनाई, सिलाई, कताई आदि तो महिला वर्ग तक ही सीमित रहने के कारण रूमालों पर कशीदा का काम भी केवल चम्बा की महिलाएं ही करती थीं।

चम्बा के रूमालों की निजी विशेषताओं की बात ऊपर कही गई है, जिन में सब से महत्वपूर्ण है इनकी दोरुखी कढ़ाई की प्रक्रिया। बिना अमेठे रेशम के रंग बिरंगे धागों से अधिकांशत: मलमल के कपड़े पर ऐसी कढ़ाई कपड़े के दोनों तरफ इस तरह से की जाती थी कि धागे का जांड़ कहीं भी नज़र न आए। इस कौशल को चम्बा में विकसित होते-होते कई सौ वर्ष का समय लगा होगा जबकि यह एक कुशल शिल्प परंपरा के रूप में विकसित हो पाई होगी। चीन जापान में भी इस प्रकार की कढ़ाई के श्रेष्ठ उदाहरण मिलते हैं जिन में प्रसिद्ध चित्रकारों की ख्याति प्राप्त कलाकृतियों को यथावत चित्रित केवल कशीदाकारी के द्वारा किया जाता था जो फलक के दोनों और बिम्ब-प्रतिबिम्ब रूप में दर्शाई जाती थी। चम्बा की कशीदाकारी में रूपाकार का बाह्य रेखांकन काले रेशम के धागे से होता था। परन्तु यह रूपाकार को निश्चित कर देने का कार्य मानव मुखाकृतियों एवं हस्त मुद्राओं में काले धागे से न करके शारीरिक वर्ण के धागों से ही किया जाता था। मानवाकृतियों को काली रेखाओं से बनाना अशुभ माना जाता था। चम्बा की इस कला में कहीं-कहीं पंजाब की फूलकारी की कला का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। अब तक जितने भी इस कला के उदाहरण प्राप्य हैं वे सभी वर्गाकार हैं इसके अतिरिक्त उन दो उदाहरणों के जिन का आकार गोल है और यह दोनों ही चम्बा के संग्रहालय में संग्रहीत हैं।

रंग रूप और संयोजन की उत्कृष्टता और रेखांकन की कुशलता को देख कर यह सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि कढ़ाई आरम्भ करने से पहले अनेकानेक रुपांकों का कच्चा रेखांकन उन शिल्पी स्त्रियों द्वारा नहीं किया जाता होगा जो इनको काढ़ती थीं क्योंकि चम्बा में चित्रकला 17वीं 18वीं शताब्दी में पर्याप्त विकसित हो चुकी थी और इन लघु चित्रों की मांग प्रत्येक संभ्रान्त घराने में होती थी अतएव यह भी अनुमान सहज लगाया जा सकता है कि कशीदा-कारी आरंभ करने से पहले ये महिलाएं अपनी पसंद के रुपाकों का रेखांकन किसी ऐसे कुशल चित्र-कार से करा लेती होंगी जिसका उनके परिवार से निकट का परिचय रहा हो—अन्यथा चम्बा के रुमालों में शिल्प कौशल तो हो सकता था परन्तु कांगड़ा शैली के लघु चित्रों जैसा रूपभेद, सादृश्य और वर्णिकाभंग संभवत: कठिन ही होता। चम्बा के सामाजिक इतिहास के अध्ययन से भी हमें पता चलता है कि चम्बा में 18वीं और 19वीं शताब्दियों में चित्रकार समाज के आवश्यक अंग के रूप

में अपना निजी स्थान बना चुके थे, जोकि एक साथ ही चित्रकार और शिल्पकार दोनों का ही कार्य करते थे—अतएव उन शिल्पी महिलाओं को अपने रुमालों पर कशीदा करने के लिए रुपांकों का रेखांकन कराने कहीं दूर नहीं जाना पड़ता था। इस प्रकार के कच्चे रेखांकन के बाद रंग विन्यास की समस्या सामने आती है, जिसके लिए लघु चित्रों का उदाहरण समक्ष ही होता था, परन्तु पानी में घोल कर रंग लगाना एक बात है और रंगीन रेशमी धागों द्वारा वही प्रभाव उत्पन्न करना नितान्त दूसरी प्रकार की दक्षता की अपेक्षा रखती है. इस कारण उसी कच्चे रेखांकन पर अलग-अलग प्रकार के रंगीन रेशमी धागों को डिज़ाइन के भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में रख-रख कर अनुमान लगाया जाता था कि कौन सा रंगीन धागा किस जगह पर लगाने से उचित प्रभाव पैदा कर सकता है। इस कार्य को उस समय की भाषा में "चस लगाना" कहते थे।

चम्बा की उस समय की चित्रकला में कृष्ण लीला का अपना महत्व रहा है और इसी कारण चम्बा रूमालों के अधिकांश रूपांक भी राधा कृष्ण के प्रेमाचार और कृष्ण लीला के विषय वस्तु पर आधारित हैं। इन में भी रास मण्डल के रूपांक चारों ओर से एक जैसे लगने के कारण अधिक लोक प्रिय रहे हैं। इन में केन्द्रीय आकार राधा–कृष्ण का रहता था और उनके चारों ओर बराबर व्यास की दूरी पर एक कृष्ण और एक गोपी बार बार बनाए जाते थे जब तक कि वृत्त पूरा न हो जाए। इस संयोजना में गोपियों की आकृति एक जैसी होते हुए भी उनके वस्त्र और सज्जा भिन्न-भिन्न रंगों की होती थी जिस से वर्ण वैचित्र्य की छटा बहुत ही आकर्षक हो जाती है। चम्बा रूमालों में जिन अभिप्रायों का अधिक उपयोग हुआ है उन में गुलेर, कांगड़ा, नूरपुर, चम्बा और बशोली कलमों में निर्मित लघु चित्रों और भित्ति चित्रों को खुले रूप से अनुकृत या अनुदित किया गया है। रेखांकन और रंग संयोजन मे जो गीतात्मकता दिखाई पड़ती है उस को देखते ही किसी कुशल चित्रकार के चित्रण कौशल और कल्पना प्राचुर्य की अन्तः धारा का स्पष्ट अभास होता है। रास-मण्डल में वर्गाकार फलक पर वृत्ताकार संयोजन की सुविधा रहने के कारण इस अभिप्राय का उपयोग सर्वाधिक हुआ है। परन्तु लघु-चित्रों की भांति ही कृष्ण लीला के विभिन्न दृश्य, गोपियों द्वारा कृष्ण की पूजा अर्चना, रास लीला आदि विषयों पर आधारित रूमालों में वन, उपवन, वृक्ष, लता, पशु-पक्षी, भू-दृश्य, भवन आदि अभिप्रायों में रेखाओं का रसात्मक बहाव और रंगों का गीतात्मक प्रयोग सर्वथा देखने को मिलता है। वेश-भूषा में भी उसी प्रकार की महीन बारीकियों पर पूरा-पूरा ध्यान दिया गया है जिन को देख कर हम यह अनुमान लगाने पर विवश हो जाते हैं कि संभवतः इन चित्रों को पूर्ण रूप देने में किसी सिद्धहस्त कलाकार ने ही सुई धागा हाथों में लेकर इन्हें अन्तिम स्पर्श दिया होगा। भारतीय कला एवं कला दर्शन की मर्मज्ञ डॉ० स्टेला क्रेमरिश ने चम्बा रूमाल की इस कला को "कशीदा में अनुदित पहाड़ी चित्र कला" ही बताया है।

अब हम चाहे इसे कला कहें या शिल्प, चम्बा रूमालों की यह कला तत्कालीन चित्रकला से यद्यपि पूर्णतः प्रभावित है तथापि इस में नारी शिल्प होने के कारण या फिर उत्सवों और पर्वो

के कारण, आराध्यों की अधिकता है, विशेषतः विष्णु के विभिन्न रूपों की, कृष्ण की लीलाओं और रास मण्डलों के अतिरिक्त जन जीवन एवं पौराणिक आधारों से संबद्ध अनेक व्यापारों को लेकर भी चम्बा रूमालों को काढ़ा गया है। विवाह दृश्य, शोभा यात्राएं, वर के घर में नव वधू का आगमन, शिकार के दृश्य तो देखने को मिलते ही हैं, इन के अतिरिक्त नायिका भेद, विभिन्न मुद्राओं में गणेश, राम का राज तिलक, दश अवतार, दश महाविद्याएं, कुरुक्षेत्र का युद्ध आदि भी परिष्कृत रुचि से बनाए गए हैं, परन्तु फिर भी प्रधानता रास मण्डल की संयोजनाओं की हो रही है।

जहां तक चम्बा रूमाल की कला के विकास का प्रश्न है, इसके तीन स्तर हमें देखने को मिलते हैं। सर्वप्रथम तो छोटे-छोटे टांकों की दोहरी कढ़ाई के नमूने मिलते हैं। यद्यपि इस में भी विषय वस्तु के चुनाव और चित्र संयोजन में परिष्कृत रुचि की प्रधानता है परन्तु शैल्पिक पक्ष में लोक रुचि दिखाई देती है। इसके पश्चात् जो चम्बा रूमाल का दूसरा स्तर देखने में आता है उसमें टांके कुछ लम्बे हो गए हैं। और साथ ही चित्र फलक के ऋण और घन (Negative & Positive) स्थलों में एक जैसी ही मिश्रणता और चमक है। जिसके कारण विषय वस्तु का उभार कम हो जाता है। इसका कारण सम्भवतः यह हो सकता है कि समय के फेर के साथ-साथ जैसे चित्र कला में गिरावट आती गई उसी के साथ-साथ चम्बा रूमाल की कला में भी शैल्पिक और कलागत ह्रास आने लगा हो। तीसरा स्तर हमें वहां देखने को मिलता है जहां आधुनिकता के प्रभाव से मशीन हस्त शिल्प के पावन परकोटे में अपना आक्रमण करने लगती है और हाथ से बने कपड़े का स्थान मशीन से बुना हुआ कपड़ा लेने लगता है। कपड़े का आधार जब मोटा हो जाता है तो वह बहुत अधिक बारीक काम की अपेक्षा भी नहीं रख पाता और इसी कारण न तो टांकों में वह महीनपन है और न ही रंग योजना में वह परिष्कार। साथ ही विलायत से रंगीन रेशम का बिना बंटा धागा जो देश में आयात होने लगा उसमें वह मिश्रणता थी जिस को हाथ में लेकर ही उस आनन्द की अनुभूति होती जो अधिक कौशलपूर्ण कार्य की प्रेरणा देता। आरंभिक उदाहरणों में तो रजत धागे का प्रयोग आभूषण, आंखें आदि बनाने में प्रयोग में लाया गया जैसा कि लघु चित्रों में सोने और चांदी से बने रंगों का प्रयोग किया जाता था। आजकल भी सरकारी प्रोत्साहन प्राप्त करके कुछ चम्बा की महिलाएं इस कला को बनाए रखने में प्रयत्नशील हैं। चम्बा कलम के चित्रकारों में प्रेम लाल धीमान आज से 15—16 वर्ष तक क्रियाशील रहे थे, और चम्बा रूमाल के रूपांकों में इन महिलाओं को सहयोग भी देते थे। परन्तु सम्प्रति पुराने रूपांकों की अनुकृतियां या फिर शुद्ध आलंकारिता से युक्त रूमाल बनाए जा रहे हैं जो न तो शैल्पिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कहे जा सकते हैं और न ही कलागत सौन्दर्य के कारण।

शैलीगत दृष्टि से देखने पर चम्बा रुमालों में दो ही शैलियां दृष्टिगोचर होती हैं एक में तो पहाड़ी चित्रकला का अनुकरण और अनुवादन है और दूसरी एक प्रकार की लोक शैली कही जा सकती है जिसमें शिल्पी महिलाएं शायद अपने रुपांकों का रेखांकन स्वयं ही करती होंगी क्योंकि

इस शैली में रूप सौष्ठव का वह विधान दिखाई नहीं पड़ता जो चित्रों का अनुसरण करने वाली पहली शैली में है। इस शैली में महिलाएं अपने उन वस्त्रों पर भी कशीदाकारी करती थीं जिन्हें वे अपने निजी उपयोग में लाती थी जैसे चोलियां, चूनरे, चादरें आदि। इस शैली में जो मानव-आकृतियां चित्रित हुई है वे कुछ उस प्रकार की हैं जैसी की स्त्रियां अब भी कृष्णाष्टमी, दीपावली, होई आदि उत्सवों पर बनाती है उनमें आलंकारिता और लोक रुचि की ही प्रधानता है। बहुत से रुमालों में तो मानवाकृतियों और प्रकृति के सामान्य अभिप्रायों का अभाव ही है। उनमें शुद्ध अलंकरण की दृष्टि से रुपांकन किया गया है, परन्तु इनमें भी समसामयिक अलंकरण चित्रण शैली का प्रभाव देखने को मिलता है जिसका उपयोग उस समय चम्बा के राज प्रासादों में भित्ति अलंकरण के लिए होता था।

अभिप्रायों के सम्बन्ध में पहले कुछ कहा जा चुका है परन्तु प्रकृति चित्रण की दृष्टि से चम्बा के इन रुमालों में बहुत विविधता है। कदली, बेंत, मजनू आदि के वृक्ष, पशु, पक्षी, हाथी, घोड़े, मयूर हंस, सारस की जोड़ी, मृग आदि का प्रयोग आलंकारिक और प्रतीकात्मक दोनों ही रूपों में हुआ है। उदाहरण के लिए यदि मयूर विरही नायक का प्रतीक है तो सारस की जोड़ी चिर मिलन का। संगीत के वाद्य यन्त्रों के चित्रण में ढोल, ढोलक, ढोलकी, बहाल, करनाल, नरसिंगा, नगाड़ा, खड़ताल, सितार, वीणा, तानपूरा आदि चित्रित हुए हैं जिस से उस समय की चम्बा की महिलाओं के संगीत प्रेम का साक्ष्य प्रमाणित होता है।

चम्बा रूमाल की कला का उद्देश्य पहले ही स्पष्ट किया गया है जिस से हम इस निष्कर्ष पर सहज ही पहुंच सकते हैं कि इस में आत्म श्लाघा और आत्म प्रदर्शन की भावना इतनी नहीं थी जितनी कि उस प्यार की जिस से कि हम अपने आराध्य या किसी प्रिय जन की प्रसन्नता के लिए कुछ भेंट करने की इच्छा करते हैं। इसी कारण इन रूमालों में शिल्पी महिलाओं के नाम नहीं के बराबर दिये गए हैं। इस का कारण यह भी हो सकता है कि यह कला चित्रकारों और शिल्पी महिलाओं का सम्मिलित प्रयत्न होता था अतएव किस का नाम डाला जाए और किस का नहीं इससे उसे अनाम ही रहने दिया गया होगा, क्योंकि भारतीय महिलाओं में एक स्वाभाविक विनम्रता होती है जिसके कारण वे प्रारंभिक रेखांकन करने वाले कलाकार को गुरुवत मान कर रूमालों पर अपना नाम डालने की धृष्टता करने का साहस नहीं कर सकती थीं। फिर कतिपय उदाहरण नामांकन के भी मिलते है। एक रास मण्डल के रूमाल में चित्र का शीर्षक दिया गया है और उसे सन् 1911 में बोध रानी द्वारा बनाया गया बताया जाता है। इसी प्रकार एक विवाह दृश्य का रूमाल भी है जिस पर गोबिन्द दासी का नाम कढ़ा हुआ है। बोधरानी वाला रूमाल चम्बा के लक्ष्मी नारायण के मन्दिर के लिए बनाया गया था। इसी प्रकार कहीं-कहीं तो रूमालों पर पूरा-पूरा दोहा या अन्य कोई छन्द भी काढ़ा गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से एक रूमाल बहुत महत्वपूर्ण है जो गुरदासपुर ज़िले के किसी पूजा स्थल में सुरक्षित है और बताया जाता है कि गुरु नानक की

बहन बीबी नानकी ने उसे बनाया था। 1964 में चम्बा की महेशी देवी को राष्ट्रपति पुरस्कार चम्बा रूमाल के कला कौशल के कारण प्राप्त हुआ।

अन्ततः हम यह कह सकते हैं कि चम्बा रूमाल की कला यद्यपि समसामयिक चित्रकला का अनुकरण और अनुवादन अवश्य करती है परन्तु एक लोक कला होने के कारण यह जन साधारण के अधिक निकट थी। साथ ही इसमें आत्म श्लाघा और आत्म प्रदर्शन न रह कर आत्माभिव्यक्ति ही प्रधान रही है इस कारण चम्बा रुमाल की कला में उस आत्मीयता और लावण्य का प्राचुर्य है जिस के कारण कोई भी शिल्प अपने विकास के उच्च शिखर पर पहुंच कर कला की संज्ञा से सुशोभित किया जा सकता है।

सैट 29, ब्लॉक 3 यू० एस० क्लब
शिमला-171001

'क्योंथली' बन्धुतावाचक संज्ञापद (किन्शिप् नाउन्ज़)

O डॉ० जगत पाल शर्मा

'क्योंथली'[1] वर्तमान हिमाचल प्रदेश तथा 'पश्चिमी पहाड़ी'[2] की प्रमुख बोली है। क्योंथली मुख्य रूप से वर्तमान ज़िला शिमला की प्रमुख बोली है। विशेष रूप से यह बोली शिमला के आस-पास ही बोली जाती है। यह बात ग्राहम बेली के शब्दों से भी स्पष्ट हो जाती है— "प्रमुख बोली क्योंथली शिमला के आस-पास बोली जाती है।"[3]

डॉ० ग्रियर्सन ने 'क्योंथली' को भाषा कहा है, जबकि इसे भाषा कहना तर्क संगत नहीं जान पड़ता है। उन्हीं के शब्दों में—"क्योंथली वस्तुतः क्योंथल रियासत की भाषा है और शिमला पहाड़ी रियासतों की प्रमुख भाषा है।"[4] वास्तव में 'क्योंथली' जो शिमला के आस-पास की बोली है, को बोली कहना ही तर्क संगत है, क्योंकि अब तक इस बोली में भाषा के गुणों का पर्याप्त अभाव है। भविष्य में कुछ भी हो सकता है, मगर अब तक इसे मात्र बोली ही के रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। फिर भी ग्रियर्सन ने 'क्योंथली' को जब भाषा के रूप में स्वीकार किया है, तो उनका इसे भाषा कहने का एक मात्र आधार यही दिखाई देता है कि उन्होंने 'क्योंथली' के अन्तर्गत छः उप-बोलियों को स्वीकार किया है तथा 'क्योंथली' को इन उप-बोलियों की प्रमुख भाषा माना है, जबकि इसे प्रमुख भाषा के स्थान पर प्रमुख बोली के रूप में माना जाना चाहिए। अतः ग्रियर्सन क्योंथली को प्रमुख बोली के स्थान पर प्रमुख भाषा कह गए हैं, जोकि तर्क संगत नहीं जान पड़ता।

---

1 G.A. Grierson, Linguistic Survey of India, Vol. I Part I (Delhi : Motilal Banarsidass, 1967), P. 183.

2. G.A. Grierson, Linguistic Survey of India, Vol. I, Part I (Delhi : Motilal Banarsidass, 1967), P. 182.

3. "Kiunthali the chief dialect spoken round Shimla." Rev. T. Grahame Baily, Linguistic Studies from the Himalyas (Delhi : Asian Pb. survices, 1975), P. 201.

4. "Kiunthali is properly the Language of the state Keonthal and is the principal language of the Shimla Hill States."

5. G.A. Grierson, Linguistic Survey of India, Vol. IX, Part IV (Delhi : Motilal Banarsidass, 1916), P. 550.

प्रस्तुत लेख 'क्योंथली' के बन्धुतावाचक संज्ञापदों से सम्बद्ध है, तो उक्त बातों को लेकर यहां विचार करना वैसे भी उचित नहीं जान पड़ता है। इसी कारण इन बातों की ओर संकेत भर किया गया है।

प्रस्तुत लेख में 'क्योंथली' के मात्र बन्धुतावाचक संज्ञा पदों को लेकर विचार किया जा रहा है। बन्धुतावाचक संज्ञापदों से तात्पर्य उन संज्ञा पदों से है, जो बन्धुत्व की ओर संकेत करते हैं या परिवार के आपसी सम्बन्धों, रिश्तों या भाईचारे को व्यक्त करते हैं। दूसरे शब्दों में पारिवारिक सम्बन्धों को व्यक्त करने वाले संज्ञापद बन्धुतावाचक संज्ञापद के नाम से जाने जाते हैं, उदाहरणार्थ

क्योंथली	हिन्दी	क्योंथली	हिन्दी
अम्मा	'मां'	बाबा/बाप्पू	'बाप'
नान्ना	'नाना'	नान्नी	'नानी'
बुब्बी	'बुआ'	बुब्बा	'फूफा'
भायड़/बाह्ई	'भाई' आदि।		

क्योंथली के अनेक बन्धुतावाचक संज्ञा पद(किन्शिप् नाउन्ज़) पूर्व-प्रत्ययों तथा पर-प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न हैं। इन सभी बन्धुतावाचक संज्ञापदों को लेकर यहां विचार किया जा रहा है। क्योंथली के समस्त बन्धुतावाचक संज्ञापदों को तालिकाओं में निम्नवत दिखा सकते हैं —

तालिका नं० I

बन्धुतावाचक संज्ञापद (सामान्य)

[छक्कड़-]	दाद्दा		दाद्दी		नान्ना	नान्नी
[लक्कड़-[	दाद्दा		दाद्दी		नान्ना	नान्नी
[पड़-]	दाद्दा		दाद्दी		नान्ना	नान्नी
[-ई]	दाद्दा		दाद्दी		नान्ना	नान्नी
[-ई]	ताऊ	ताई	चाच्चा	चाच्ची	माम्मा	माम्मी
[-आ]	बुब्बी		बुब्बा		मौंसी	मौंसा
	भायड़/बाह्ई (बुब्बी रा बेट्टा/बगेह्र)				भायड़/बाह्ई (मौंसी रा बेट्टा/बगेह्र)	
	भायड़/बाह्ई/मैड़ (ताऊ/जाच्चे रा बेट्टा बगेहर)				भायड़/बाह्ई/मैड़ (माम्मे रा बेट्टा/बगेह्र)	
	बाबा/बाप्पू				अम्मां	
	बेट्टा/बगेह्र (बाह्ई)				बेट्टी/धी/धीज़ (बोबो/बैह्ण)	
[-हउ/ओहट्टी/बी]	बह्उ/बोह्टी/भाब्बी					
[-ओई]					ज्वांइं/जइं/बह्णोई/जिजा	
[-बतिज्जा/तिज्जी]	बत्तिज्जा/बत्तिज्जी				भाणजा/भाणजी	
[-र/जी]	पोत्ता/पोत्ती				देह्योत्ता/देह्योत्ती	
	पोत्ता		पोत्ती			

तालिका नं० II

ससुराल बन्धुतावाचक संज्ञा पद (लड़का) —

शाह्‌उरा (दाद्‌दा)	शाह्‌उरा (नान्ना)
शाशू (दाद्‌दी)	शाशू (नान्नी)
शाशू (बुब्बी)	शाह्‌उरा (माम्मा)
शाह्‌उरा (बुब्बा)	शाशू (माम्मी)

शाशू शाह्‌उरा

लाड़ी/ज्वाणस/गौह्‌राऔली

[-ओई] ज्वांई/बह्‌णोई/जिजा

साला साली साह्‌डू

तालिका नं० III

ससुराल बन्धुतावाचक संज्ञा पद (लड़की)

शाह्‌उरा (दाद्‌दा)	शाह्‌उरा (नान्ना)
शाशू (दाद्‌दी)	शाशू (नानी)
शाशू (बुब्बी)	शाह्‌उरा (माम्मा)
शाह्‌उरा (बुब्बा)	शाशू (माम्मी)

शाशू शाह्‌उरा

लाड़ा/मालक/गौह्‌राऔला

[-ह्‌उ/ओह्‌ट्‌टी/बी]	बह्‌उ/बोह्‌ट्‌टी/भाब्बी	
[-ऐणी/याणी]	जेठ	जठैणी/जठ्‌याणी
[-ऐणी/याणी]	द्योर	दरैणी/दर्‌याणी
[-ओइया]	नणद	नणदोइया

यहां पर ऐसे बन्धुतावाचक संज्ञापदों को लेकर अलग से विचार करने की आवश्यकता नहीं है, जो कि पूर्व-प्रत्ययों तथा पर-प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न नहीं हैं, उदाहरणार्थ —

अम्मा	'मां'
बाबा/बाप्पू	'पिता, बाप'
बाह्‌ई/भैड़	'भाई'
बैह्‌ण/बोबो	'बहिन' आदि

उपर्युक्त प्रकार के सभी संज्ञापद तालिकाओं में दिखाए जा चुके हैं।

यहां पर उन्हीं बन्धुतावाचक संज्ञा पदों को लेकर विचार किया जा रहा है, जो कि पूर्व-

प्रत्ययों तथा पर-प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न हैं। बन्धुतावाचक पूर्व-प्रत्ययों तथा पर-प्रत्ययों के योग से व्युत्पन्न संज्ञापदों के उदाहरण निम्नवत् हैं –

1.	[छक्कड़]	छक्कड़-दाद्दा	—	छक्कड़ दाद्दा	'छक्कड़ दादा'
		छक्कड़-दाद्दी	—	छक्कड़ दाद्दी	'छक्कड़ दादी'
		छक्कड़-नान्ना	—	छक्कड़ नान्ना	'छक्कड़ नाना'
		छक्कड़-नान्नी	—	छक्कड़ नान्नी	'छक्कड़ नानी'
2.	(लक्कड़-)	लक्कड़-दाद्दा	—	लक्कड़ दाद्दा	'लक्कड़ दादा'
		लक्कड़-दाद्दी	—	लक्कड़ दाद्दी	'लक्कड़ दादी'
		लक्कड़-नान्ना	—	लक्कड़ नान्ना	'लक्कड़ नाना'
		लक्कड़-नान्नी	—	लक्कड़ नान्नी	'लक्कड़ नानी'
3.	(पड़-)	पड़-दाद्दा	—	पड़ दाद्दा	'पड़ दादा'
		पड़-दाद्दी	—	पड़ दाद्दी	'पड़ दादी'
		पड़-पोत्ता	—	पड़ पोत्ता	'पड़ पोता'
		पड़-नान्ना	—	पड़ नान्ना	'पड़ नाना'
		पड़-नान्नी	—	पड़ नान्नी	'पड़ नानी'
4.	(-ई)	दाद्दा-ई	—	दाद्दी	'दादी'
		नान्ना-ई	—	नान्नी	'नानी'
		ताऊ-ई	—	ताई	'ताई'
		चाच्चा-ई	—	चाच्ची	'चाची'
		माम्मा-ई	—	माम्मी	'मामी'
5.	(-आ)	बुब्बी-आ	—	बुब्बा	'फूफा'
		मौंसी-आ	—	मौंसा	'मौसा'
6.	(-बी)	बाह्ई-बी	—	भाब्बी	'भाभी'
		भायड़-बी	—	भाब्बी	'भाभी'
7.	(ह्उ/ओह्ट्टी)	बेट्टा-ह्उ	—	बह्उ	'बहू'
		बेट्टा-ओह्ट्टी	—	बोह्ट्टी	'बहू'
8.	(-ओई)	बैह्ण-ओई	—	बह्णोई	'बहनोई'
9.	(-तिज्जा)	बाह्ई तिज्जा	—	बत्तिजा	'भतीजा'
10.	(-तिज्जी)	बाह्ई-तिज्जी	—	बत्तिज्जी	'भतीजी'
11.	(-जा)	बैह्ण-जा	—	भाणजा	'भानजा'
12.	(-जी)	बैह्ण-जी	—	भाणजी	'भानजी'
13.	(-ह्ड़ू)	साली-ह्ड़ू	—	साह्ड़ू	'साली क पति'
14.	(-ऐणी/याणी)	जेठ-ऐणी	—	जठैणी	'जेठानी'
		जेठ-याणी	—	जठ्याणी	'जेठानी'

दयोर-ऐणी — दरैणी 'देवरानी'
दयोर-याणी — दर्याणी 'देवरानी'

15. (-ओईया) नणद-ओइया — नणदोइया 'ननदोई'

उपर्युक्त बन्धुतावाचक संज्ञापदों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि 'क्योंथली' के अधिकतर बन्धुतावाचक संज्ञापद पूर्व प्रत्ययों और पर-प्रत्ययों से व्युत्पन्न हैं । बन्धुतावाचक पूर्व-प्रत्यय (छक्कड़ -) केवल शब्द रूप में ही मिलता है, सम्बन्ध रूप में छठी पीढ़ी के दर्शन आज के युग में लगभग असम्भव से हैं । इतना ही पर्याप्त है कि सम्बन्ध रूप में न सही (छक्कड़) शब्द रूप में आज भी मिलता है ।

'क्योंथली' की निजी विशेषता यह है कि इस बोली में ससुराल बन्धुतावाचक संज्ञापदों को लेकर विशेष रूप से 'दाद्दा, दाद्दी, नान्ना, नान्नी, माम्मा, माम्मी' आदि तथा 'शाशू', 'शाह्उरा' को लेकर अन्तर नहीं मिलता है । अतः इन सम्बन्धों को भी 'सास', 'ससुर' से ही जाना जाता है । इसी कारण 'क्योंथली' में हिमाचल प्रदेश की दूसरी बोलियों (बिलासपुरी, मण्डियाली आदि) की तुलना में बन्धुतावाचक संज्ञापदों की संख्या कुछ कम है । इसीलिए 'सास','ससुर' तथा 'दादा', 'दादी' जैसे सम्बन्धों में कोई स्पष्ट भेद दर्शाने वाले अलग से संज्ञापद नहीं हैं । इन सम्बन्धों को लेकर इस बोली में कुछ अस्पष्टता है । कुछ एक बन्धुतावाचक संज्ञापदों में कुछ दूरी पर जाने पर उच्चारण भिन्नता भी देखने को मिली है तथा मिल सकती है ।

प्रस्तुत लेख के लिए तीन सूचक रहे हैं—(1.) हर्ष वर्धन जोशी, गांव मलयाणा, ज़िला शिमला, (2.) लक्ष्मी शर्मा, गांव जनोल, ज़िला शिमला, (3.) जीत सिंह ठाकुर, गांव चायली, ज़िला शिमला । आवश्यकतानुसार तीनों सूचकों से सहायता ली गई है। अनेक शंकाओं का निवारण करने हेतु प्रस्तुत लेख के लिए तीन सूचकों की आवश्यकता पड़ी । तीनों के प्रति आभार प्रदर्शन ।

हिन्दी-विभाग
हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला-5

ख्वाजा–पीर

○ डॉ० रत्न चन्द शर्मा शास्त्री

पुराण ग्रन्थों में जल के अधिष्ठाता वरुण देवता को जो स्थान व मान्यता प्राप्त है, वही भारतीय भाव धारा में 'ख्वाजा' को भी है। विद्वानों की धारणा है कि ख्वाजा ख़्ज्रि एक अनूठा उदाहरण है जहां हिन्दू-देवता को मुस्लमानी नाम दिया गया है। इसी देवता का नाम अबलिया तथा पिता को मलखान भी बताया जाता है। सिकन्दर नामा में उल्लेख मिलता है कि ख्वाजा खि़ज्र जल से सम्बद्ध तथा अमृत जल का अधिष्ठाता है। यह मिहतर इलियास का भाई है और इसका जल पर आधिपत्य है। इसका सम्बन्ध सिकन्दर से भी निर्दिष्ट किया गया है। तदनुसार' एक बार सिकन्दर महान् खि़ज्र इलियास को साथ लेकर अमृत की खोज में निकला। अनेक सेवक भी साथ थे। वे सब चलते–चलते एक ऐसे स्थान पर पहुंचे जहां से वह मार्ग दो भागों में विभक्त था। अत: सिकन्दर कुछ सेवकों के साथ एक मार्ग से तथा वे दोनों भाई अन्य सेवकों को लेकर दूसरे मार्ग पर आगे बढ़ने लगे। दोनों भाईयों के दल को मार्ग में एक जलस्त्रोत मिला। उन्होंने वहां रुक कर एक मछली को पकाया और उसकी अस्थियां जल में फैंक दी। वे अस्थियां पुनर्जीवित होकर मछली बन गई। इस घटना को देखकर दोनों भाई इस निर्णय पर पहुंचे कि यही 'अमृत कुण्ड' है। अत: दोनों ही जी भर पानी पीकर यह सुखद समाचार सिकन्दर को बताने चल पड़े। सिकन्दर भी इस अद्‌भुत घटना को सुनते ही उत्सुकता से अमृतकुण्ड पर पहुंचा उसने कुण्ड के आस–पास विचरने वाले अस्वस्थ तथा पक्ष-हीन पक्षियों की ओर संकेत करते हुए खि़ज्र से इसका रहस्य जानना चाहा। खिज्र ने कहा "इन्होंने अमृत-पान किया है अत: ये प्रलय पर्यन्त जीवित रहेंगे। परंच खान-पान की अशुद्धियों तथा तद्‌जन्य रोगों के कारण इनकी यह अवस्था तो रहेगी ही।" यह सुनकर सिकन्दर असमंजस में पड़ गया। अन्तत: अमृत न पीने का निश्चय कर लौट आया। दोनों भाई अमृत पीकर अमर हो चुके थे। दोनों ने ईश्वर की अराधना से अनन्त एवं सुखमय जीवन का वरदान प्राप्त किया। प्रभु ने ख्वाजा खि़ज्र को जल का राज्य सौंप दिया। इसी ग्रीक उपाख्यान से मेल खाती कथा सहारनपुर ज़िले में भी प्रचलित है।

यूनान की कुछ किम्वदन्तियों के अनुसार ख्वाजा को सफेद दाढ़ीवाला वृद्ध तथा हरितवस्त्र धारी माना जाता है। यह भी मान्यता है कि खि़ज्र के एक अंगूठे में हड्‌डियां नहीं है। हरितिमा-

वाहक के रूप में वह जहां भी जाता है, अथवा बैठता है उस स्थान को हरे भरे भू-भाग में परिवर्तित कर देता है।

कुछ मुस्लिम धर्मवेत्ता फिनियास, इलियास और सन्त जार्ज के साथ खिज़्र का सम्बन्ध बिठाते हैं। उनका कहना है कि उसकी आत्मा इन तीनों में अविर्भूत हुई थी। कुछ लोगों की यह भी धारणा है कि यह मैखान का पुत्र बलिया है तथा फरीदूं (८००ई०पू०) का समकालीन है। इसे मूसा का समकालीन तथा सिकन्दर का सेनापति भी कहा जाता है। ख्वाजा खिज़्र ने ही मूसा को लाल सागर दिखाया था और वही सिकन्दर को अमृत-कुण्ड तक ले गया था।

शिक्षक के रुप में : - गुजरात, पाकिस्तान में स्थित जलालपुर जट्टां में एक पुस्तक खिज़री नाम से प्रसिद्ध रही है। कुछ लेखकों का यह अभिमत है कि यह पोथी खिज़्र ने उन लोगों के पूर्वजों को दी थी तथा लिखना भी सिखाया था।

खिज़्र की मान्यता के प्रमाण लाहौर में भी उपलब्ध है। लाहौर (पाकिस्तान) स्थित दुर्ग का रावी की ओर वाला द्वार खिज़्र-द्वार कहलाता है। संभवतः तब रावी इस दुर्ग से छूकर बहती होगी।

ख्वाजा का ज्ञान व विद्या प्रेम :— ज्ञान में खिज़्र मूसा से भी प्रौढ़तर माने जाते थे। एक बार मूसा उनसे मिलने भी गए थे। तब उनके सामने खिज़्र ने एक नौका का फट्टा उखाड़कर उसे नकारा कर दिया। एक सुन्दर लड़के की हत्या कर दी तथा बिना किसी से बात किए एक जीर्ण दीवार का पुनः निर्माण कर दिया। मूसा ने इन तीनों घटनाओं के रहस्य का कारण पूछा, तब ख्वाजा खिज़्र ने उत्तर दिया —यह नाव जिसे मैंने बिगाड़ दिया है एक निर्धन अनाथ बालक की है, यदि यह ठीक अवस्था में रहती तो कल ही यहां के क्रूरशासक के हाथों चली जाती। जिस लड़के की मैंने हत्या की है, वह तन से तो सुन्दर परन्तु उसके मन में कालुष्य भरा था। यदि वह जीवित रह जाता तो उसने बहुत अनर्थ करने थे। जिस दीवार का मैंने जीर्णोद्धार किया है, वह एक दबे, सुगुप्त खजाने की सूचना देने वाली है। यदि वह ढह जाती तो कोई संकेत न बचता। अब इस दीवार की सहायता से अधिकारी अपनी निधि की खोज सुविधा से कर पाएगा मेरी रूचि के विशेष कारण का फल सरल श्रद्धावान् एवं निर्धन बालकों को ही प्राप्त होगा।

ख्वाजा खिज़्र के विद्या प्रेम का भी अन्य कथानक उपलब्ध होता है। यह कहा जाता है कि हजरत इमाम गज़ाली बहुत विद्या प्रेमी थे, परन्तु वह निर्धनता के कारण एतदर्थ अधिक समय नहीं निकाल पाते। एक रात्रि को ख्वाजा खिज़्र ने उन्हें स्वप्न में दर्शन देकर आदेश दिया कि वे अपना मुंह खोले ताकि खिज़्र एक ही फूंक मारकर उन्हें समस्त ज्ञान प्रदान कर दे। बिनाश्रम से अर्जित विद्या ग्रहण करने से इमाम गज़ाली ने इन्कार कर दिया। तब ख्वाजा ने उन्हें तेल के कुछ ढोल दिए जिन्हें बेचकर वे जीवन यापन की ओर से निश्चित रह कर विद्या संचय कर सके।

अनेक नाम : हिमाचल प्रदेश में ख्वाजा खिज्र को अनेक नामों से पुकारा जाता है। चम्बा में इन्हें वीर वेताल कहते हैं. कहीं दुमिन्दा, दुमिन्दो, जिन्दा-पीर, जिन्दा तथा कांगड़ा में इनका विशेष प्रचलित नाम ख्वाजा या ख्वाजापीर है। जल तथा स्थल पर सर्वत्र ख्वाजा को आराधना से प्रत्यक्ष किया जा सकता है, वे स्मरण मात्र से प्रकट होकर साधकों के कष्ट का निवारण करते हैं।

"जल-थल ख्वाजा सिमरिए। मेरा ख्वाजा जाहिर।

हिन्दू बाबा नानक को अपना गुरु स्वीकारते हैं, पीरों को गुरु जिन्दा (ख्वाजा) है। यदि कोई ख्वाजा पीर की आराधना करता है, तो वे अविलम्ब उसे फल प्रदान करते हैं।

"हिन्दुआं दा गुरु बाबा नानक। पीरां दा गुरु जिन्दा।
जे ख्वाजे दी करगा सेवा। तां हत्थो-हत्थ मंजूरी दिन्दा॥"

यहां यह भी उल्लेखनीय है कि हिमाचल प्रदेश में ख्वाजा खिज्र, बाबा नानक तथा पीर पैगम्बरों के प्रति भी उतनी ही आस्था है जितनी किसी हिन्दू देवता के प्रति। कांगड़ा जनपद में आज भी तांत्रिक (चेले) किसी भूताविष्ट रोगी का तांत्रिक उपचार करते समय गुरु नानक देव का नाम 'वाहे गुरु' कहकर उच्चारण करते हैं। धर्म, जाति व संप्रदाय की गन्ध सामान्य जन समाज से कोसों दूर है। ये सोमवार को यदि किसी शिवालय में शिवार्चन के लिए जाते हैं तो वीरवार के दिन पीर की दरगाह पर भी उसी श्रद्धा से उपस्थित होते हैं। इस जनपद का हर तांत्रिक भूतोपहल व्यक्ति के भूतापसारण के समयभूताविष्ट को पूजा स्थल (थड़े) पर बिठाकर उसे कहता "बोल वा गुरु"। अर्थात 'वाहे गुरु' का नाम उच्चारण करो। इसी प्रकार अनेक तांत्रिक ख्वाजा पीर की आराधना के बल पर अनेक मानसिक रोगों का उपचार करते हैं।

कांगड़ा के जनमानस में ख्वाजा पीर हिन्दू देवी-देवताओं से ही पूर्णतया न केवल संयुक्त है अपितु इसे बाबा आदम से भी सम्बद्ध किया जाता है। तांत्रिकों की यह धारण है कि ख्वाजा के साथ पांच पीर हनुमान तथा भैरों भी चलते हैं। विशेषतः वर्षा ऋतु में जब नदियों में बाढ़ आ जाती हैं तब वेगवती नदी में ख्वाजा पीर (जल का अधिष्ठता देवता) नीले घोड़े पर सवार होकर नदी के प्रथम वेग की धारा के रूप में सबसे आगे चलता है।

मंझ समुद्रें बाबा आदम बैठे, बाबे आदम दे सिर टोपी बणदी।
जो बाबे आदम दी नशाणी, गले खिलका बणदा।
बाबे भीखे दी नसाणी, हत्थे खुंडी बणदी।
पजां पीरां दी नशाणी॥

यह भी मान्यता है कि ख्वाजा पीर की इस प्रथम लहर का प्रभाव सवा घड़ी अथवा सवा पहर पर्यन्त विशेष दिखाई देता है।

ख्वाजे दी लैहर,
'सवाई घड़ी, सवा पैहर'।

ख्वाजा की प्रथम लहर जब सबसे आगे बढ़ती है तो उस समय नानाविध वाद्यवृन्द -तुरी रणसिंगा, नगाड़ा आदि सुनाई देते हैं। ख्वाजापीर स्वयं नौका में अन्य धारणा के अनुसार नीले घोड़े पर बैठा होता है। सर्पाकार लहरियों के रुप में शेषनाग भी उसके साथ आगे बढ़ता जाता है। पांच पीर भी साथ होते हैं :

"ख्वाजा जिन्दा तले बिन्दा, जले घोड़े चढ़या।"

ख्वाजा का देहरा : यह विश्वास किया जा हैं कि इस जल-देवता के देहरे का निर्माण मुलतान की ईटों से हुआ है। श्री हनुमान तथा भैरों ने उन ईटों से इसके देहरे की चिनाई की है। उस देहरे के मध्यभाग में बूढ़ा बाबा दाढ़ी वाला बिराजमान होता है। उसकी गोदी में नौलाख राणा खेलते है। वह स्वयं सूर्य के समान देदीप्यमान आकृति से युक्त, हाथ में कड़ा धारण किए हुए तथा गले में फूलों की माला धारण करता है :—

बिच समुद्रां देहरा बणया, इट्ट लग्गे मुलतानी।
कौण करें दे इट्टां, तां कोण करे चिनाई॥
तित्थू देहरा बणया, देहरे अन्दर बूडडा बाबा बैठया।
सूरज रसमाला, हत्थे कड़ा, गले फुलां दी माला॥
रोंगले पीढें बैठे मियां बीबी, कुच्छड़ खेले नौलक्ख राणा॥

आविर्भाव विषयक अवधारण :—बाढ़ आदि का प्रकोप श्रावण तथा भादों मासों में ही प्रायः अधिक हुआ करता है अतः श्रावण मास के आरम्भ में ही ख्वाजा का आविर्भाव माना जाता है। आषाढ़ बीतने पर श्रावण मास के प्रथम सप्ताहन्त के प्रथम दिन की आधी घड़ी तथा प्रथम नक्षत्रमें गुजिन्दे के घर इस ज्योति का प्राकट्य हुआ :—

"जांन्दा हाड़ उतरदा सौण, सत्त प्रविष्टे, जेठी घड़ी, पहला नच्छत्र, गुरजिन्दे दे जोत जम्मी। उस समय दुन्दुमियां बजने लगीं आकाश में बिजलियां चमकीं तथा पृथ्वी थर्राने लगी। ख्वाजा पीर प्रकट होकर नीले घोड़े पर सवार पर्वतों को चीरता हुआ, ऊंचे पहाड़ों से समतल की ओर दक्षिण से उत्तर की ओर बढ़ता जाता है। वह अंजलीभर (खुले दिल से) अपने भक्तों की मनोकामनाएं पूर्ण किया करता है। इसीलिए उसका नाम ख्वाजा पीर पड़ा है :—

"तो सां चलिया, नगारें कक्की होई टकोर,
कक्की दें गलें घुंगरु, नीले दें गलें हार।
कक्की तोड़े पर्वत, तां नीला तोड़े पहाड़॥
अम्बरां बिजली गड़के, धरती वहन्दी गणीन।
उच्चयां पहाड़ां ते ख्वाजा चलया बिच बरेतियां जो आया।
दक्खण चढ़या उत्तरें आया।
ख्वाजा गुणे दा उंजल दिंदा,
ख्वाजा पीर कहाया॥"

कहीं-कहीं प्रस्तर प्रतिभाओं में भी ख्वाजा को सफेद दाढ़ी
बाला, मच्छली पर खड़े वृद्ध के रूप में दर्शाया गया है।

हिन्दू तथा मुस्लमान इसके प्रति समान आस्था रखते हैं। विशेषतया झीवर, मल्लाह तथा अन्य जल-सम्बन्धी कार्य करने वाले इस के प्रति अधिक आस्थावान् होते हैं। नदी में यात्रा करने वाले अथवा किसी कार्य-वश कुऐं में उतरने वाले ख्वाजा को प्रसन्न किया करते हैं। उस समय दीपक जला कर प्रसाद बांटा जाता है। न केवल नई नाव पानी में उतारते समय ही अपितु नाव द्वारा यात्रा करते समय भी ख्वाजा-पीर को पूजा जाता है। इसी प्रकार नदी-जल घटने पर अथवा बाढ़ का भय उपस्थित होने पर ख्वाजा को गुड़, दलिया या रोट भेंट किया जाता है। दलिया अथवा रोट आदि चढ़ाते समय सवा सेर, सवा पांच सेर अथवा कभी-कभी सवा मन के परिमाण का भी ध्यान रखा जाता है :-

सवा मणे दा रोट धरयां,
बहुती धरयां मिठाई,
ख्वाजे दियां बहाई,
ख्वाजे लियां मनाई ॥

ख्वाजा को बाबा आदम से सम्बद्ध तथा सृष्टि का देवता भी माना जाता है। पुत्रार्थी हिन्दू कुएं पर एनर्थ दीपक जलाया करते है। कुऐं की मुंडेर (मण) को प्रतिदिन साफ करते हैं। रहट की टिंडों को ख्वाजा का घोड़ा कहा जाता है। टूटी टिंडों को बदलते समय इन्हें पहले घास से भरा जाता है। जिसका अर्थ है घोड़े को घास खिलाते हैं। सत्य की शपथ हेतु भी व्यक्ति को कुऐं पर ले जाकर कहा जाता है, अब तुम ख्वाजा पर खड़े होकर सच-सच बोलना।

जैसा कि ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, हिन्दुओं में ख्वाजा के प्रति पर्याप्त मान्यता है। वर्षा ऋतु में स्त्रियां तालाब, कूप, नदी या वापी पर प्रातः तथा सायं दीपक जलाया करती हैं। झीवर तथा मल्लान नाव पर आटे का चौमुखा दीपक जलाते हैं। फूलों की मालायों से नौका को सजाया जाता है। सब बारी-बारी झुक कर प्रणाम करते हैं। यथाशक्ति पैस चढ़ाते हैं, दलिया या रोट प्रसाद के रूप में भेंट करते हैं।

नया कुआं खोदते समय अथवा उसके निर्माण की समाप्ति पर ख्वाजा की पूजा की जाती है। उसे नीला झंडा भी चढ़ाया जाता है जो प्रायः जलाशय के पास गाढ़ा जाता है। जलाशय में पानी की न्यूनता होने पर भी इस पीर की मनौती की जाती है।

बेड़ा तारना : - मरणोपरान्त नदी अथवा सागर सुख पूर्वक पार किया जा सके, इस भावना से स्त्रियां वर्षा ऋतु में विशेषतया बेड़ा तारा करती हैं। बेड़ा (नाव) की पूजा की जाती है। उस समय ख्वाजा के लिए नीला ध्वज, दीपक, दलिया अथवा रोट भेंट किया जाता है। चान्दी की नाव, चप्पू, मल्लाह के लिए वस्त्र तथा अन्य भेंट देकर तम्बोल लगा कर भाई (धर्म-भाई) बनाया जाता है।

हर फसल घर आने पर कृषक अथवा झीवर सवा पांच सेर अन्न का मिष्ठान्न (दलिया) प्रसाद रूप में ख्वाजा को भेंट कर सबमें बांटते है।

चम्बा में यह प्रचलन है कि वीर वेताल हर नदी, नद अथवा जल स्त्रोत का अधिपति है। अतः उसे खिचड़ी अन्न आदि चढ़ाते हैं। पुल, बावड़ी आदि के निर्माण कार्य के आरंभ में भी वीर की पूजा की जाती है। मिंजर का मेला भी इसी वीर से सम्बन्ध है।

ख्वाजा पीर वस्तुत ही सांप्रदायिक सद्भाव का प्रतीक भूत देवता है। हिन्दू-मुस्लमान तथा अन्य संप्रदाय व जाति के लोग भी इस पीर के प्रति समान आस्था रखते हैं। आज भी ख्वाजा पीर के प्रति जन समान्य में किसी न किसी रूप में मान्यता सजीव है।

सचिव, यशपाल साहित्य परिषद्
अप्पर बाज़ार नादौन, जिला हमीरपुर (हि०प्र०)

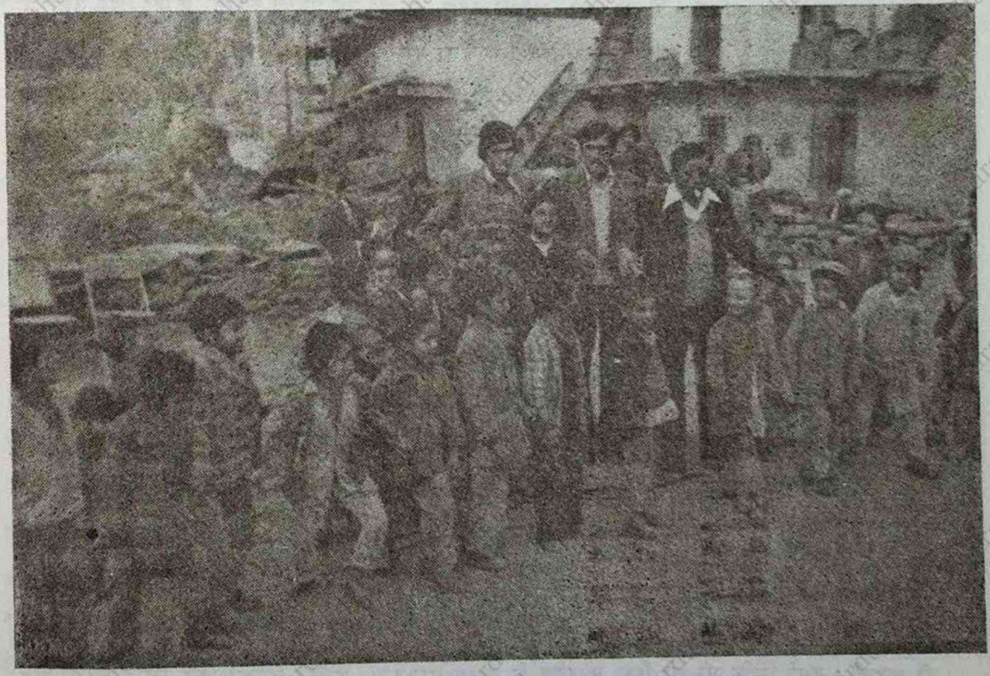

छिद्र महादेव

O वेद प्रकाश शांडिल

जिला कांगड़ा में अनेक ऐसे स्थान हैं जिनका अत्यन्त ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक महत्व है परन्तु अधिकांश लोग ऐसे स्थानों के बारे में अनभिज्ञ हैं। ऐसा ही लुप्त पड़ा एक स्थान तहसील पालमपुर में धीरा नौरा सड़क पर स्थित भनारी बस स्टॉप से लगभग चार किलोमीटर दूर जीप योग्य रास्ता बुछुआई एवं पुड़वा पंचायतों के अन्तर्गत एक नाले में छिद्र महादेव नाम से जाना जाता है। लोग इसे छिद्र गंगा नाम से भी पुकारते हैं। रोचकता यहां की यह है कि यहां कोई भी मन्दिर निर्मित नहीं है।

शायद जिला कांगड़ा में ही नहीं अपितु प्रदेश में भी यह पहला स्थान है जो छिद्र महादेव नाम से प्रकट हुआ समझा गया है। जैसा नाम वैसा गुण यानि महादेव जी एक छिद्र में समाये हुये विराजमान हैं और उन की जटा जूट से प्रवाह करती गंगधारा का एक अंश इस छिद्र से प्रकट हुआ है। 1977 में मैंने इस क्षेत्र के एक बुजुर्ग से प्रथम बार छिद्र महादेव के महत्व के बारे में जाना था। भगवान छिद्र महादेव ने जहां इस क्षेत्र में शान्ति प्रदान की है वहीं लोगों की मनौतियां को भी पूरी करते हैं। कहते हैं कि इस स्थान पर पहुंच कर पशु पक्षी भी आपसी शत्रुता को भूल जाते हैं और शान्ति प्राप्त करते हैं। मुझे बुजुर्ग के प्रसंग ने चौंका दिया। मेरा श्रद्धावनत होना स्वाभाविक था। उस समय इस अपरिचित स्थान के लिये कोई भी आवागमन का साधन उपलब्ध नहीं था। मैंने उस बुजुर्ग को पुनः खोजना शुरू किया। उनका मुझे कोई अता पता नहीं चला। मैंने छिद्र महादेव की खोज भी जारी रखी। मुझे ऐसा आभास होता है जैसे कोई सत्यशक्ति मेरे कानों में नाद कर रही है। वही सत्यशक्ति मेरे मन मस्तिक में भी हलचल किये है बिल्कुल उसी तरह जिस तरह योगी कुंडलनी को जागृत करवा कर बुद्धि से दिव्य प्रकाश का साक्षात्कार करता है।

1984 में मेरे सम्पर्क में महात्मा दुर्गा गिरि जी आये उन से मुझे छिद्र महादेव की स्थिति के बारे में पूरा पता चला। जो कथा उस बुजुर्ग ने सुनाई थी उससे मिलती जुलती महात्मा दुर्गा गिरि जी ने भी सुनाई। दुर्गा गिरि जी तो छिद्र महादेव के स्थान पर डेरा जमाये तपस्या कर रहे हैं परन्तु वह बुजुर्ग कौन थे यह अभी तक रहस्य बना है, जिस की खोज जारी है।

कथाः लोक श्रुति के अनुसार बनवास काल में जब पाण्डव कृष्ण बिहार (खनियारा) के घने जंगलों में अपना समय व्यतीत कर रहे थे तो वह हर रोज मार्जनी (मांझी) नदी में स्नान करते थे। एक बार पाण्डवों को जला कर मार डालने के षडयन्त्र के लिये लाक्षया मण्डप बनाया गया जिस का पता पाण्डवों को चल गया और पाण्डव वहां से भाग निकले, तत्पश्चात् उन्होंने कुछ समय एरला कण्डी के घने जंगलों में बिताया। वर्षा ऋतु समाप्त हो चुकी थी और कुछ ही महीनों के बाद मकर मास तथा कुम्भ पर्व आने वाला था। द्रौपदी ने हठ किया कि सारे पर्व काल में स्नान गंगा जल से करना चाहिये तब ही हमें पुन्य का महाफल प्राप्त होगा, यह किसी भी सूरत में सम्भव नहीं प्रतीत होता था। पाण्डव चिन्तित हो उठे। भाईयों ने परामर्श किया कि वचन तथा सत्य धर्म निभाना है तो साथ ही द्रौपदी की सात्विक इच्छा पूरी करना भी कर्तव्य है। अगले दिन ईश्वर इच्छा के वशी भूत हो उन्होंने अगले पड़ाव के लिये प्रस्थान कर दिया और सूर्य अस्त होते होते छिद्र महादेव के इस स्थान पर आ पहुंचे। नजर दौड़ाई कोसों दूर तक घने जंगल ही जंगल थे। कहीं भी कोई प्राणी मात्र दिखाई नहीं देता था। उन्होंने विशाल पहाड़ी के आंचल में डेरा जमा दिया। भीम ने डेरे के सामने पर्दा करने के लिये स्थान साफ किया और छोटे-छोटे गोल पत्थर बिछा दिये। उन पत्थरों पर लगभग 100/150 क्विंटल की एक चट्टान उखाड़ कर रख दी। युधिष्ठिर के पूछने पर भीम ने बताया कि यह चट्टान पर्दे के इलावा शत्रु अथवा जंगली जानवरों से भी हमारी रक्षा करेगी। यह चट्टान आज भी विद्यमान है और इसमें दरारें देखी जा सकती हैं। द्रौपदी सो चुकी थी। चिन्तित पाण्डवों ने सर्वकल्याणकारी भगवान शिव को याद किया। कल्याण के लिये सत्य मार्ग दर्शाने की प्रार्थना करने लगे। दुःखी पाण्डव नेत्रों से प्रेम अश्रु टपकाते टपकाते सो गये। स्वप्न में महादेव जी ने सब को साक्षात् साकार दर्शन देकर कृतार्थ किया और कुछ आदेश भी दिया। प्रातः नित्यकर्म से निपट कर सब से पहले द्रौपदी ने स्वप्न का हवाला दिया कि शंकर जी ने मुझे दर्शन देकर आदेश दिया कि देवी घट में गंगा, घट में यमुना, घट में ही त्रिवेणी की धार है। पण्डवों ने भी स्वप्न में दिये आदेश के मुताबिक उस स्थान को ढूंढ लिया जो उन के डेरे के साथ ही था। पहाड़ी के साथ एक बहुत बड़ी शिला सटी हुई थी। उस शिला को हटाने के लिये भीम ने यूं ही पांव का प्रहार किया वह शिला नीचे गिर पड़ी। क्या देखते हैं कि अन्दर एक सुरंग है। पाण्डव अन्दर प्रवेश कर गये। कुछ दूरी पर उन्हें सुरंग के मध्य बिछी हुई शिला मिली। भीम ने यूं ही इस शिला को हटाया तो जल धारा निकल पड़ी। उस कुंड से निकल रही जल धारा को नापने लगे तो छिद्र की गहराई का अंत न पा सके और पाण्डव नतमस्तक हो गये। आगे बढ़े तो दूसरे छोर पर फिर उन्हें खड़ी शिला टकराई। भीम ने उसे भी घुटने का प्रहार किया जो दूसरी ओर लुढ़क गई। फिर क्या था, सुरंग के लिये दो प्रवेश द्वार बन गये। निचले प्रवेश द्वार पर पाण्डवों ने एक ओर ऊंचा मण्डप बनाया और रहने लग पड़े. अगली रात महादेव जी ने पाण्डवों को फिर स्वप्न में आदेश दिया कि छिद्र से जो जल निकल रहा है वह मेरी जटा जूट से निकली गंगधारा का ही अंश है। परीक्षण करके देख लो यह साक्षात गंगा जल है यह महादेव का वचन सत्य है परमसत्य है। द्रौपदी को विश्वास हो गया। पूरा मकर

और कुम्भ पर्व ही नहीं बनवास की बहुत सारी अवधि वे यहीं रहे और तपस्या की। कौरवों ने पाण्डवों को ढूंढने के कई प्रयत्न किये परन्तु वे यहां नहीं पहुंच सके थे।

पाण्डवों के जाने के बाद यह स्थान फिर निर्जन होकर रह गया। पशु पक्षी इस जल धारा का आन्नद लेने लगे। शांतचित हो आपसीं शत्रुता एवं बैर को भुलाकर विचरण करने लगे। उस अपरिचित बुजुर्ग जिसने मेरे साथ बैजनाथ से परौर तक यात्रा की थी का कहना था कि छिद्र-महादेव के एक किलोमीटर क्षेत्र में इतनी शान्ति है कि मानव को भूख प्यास की बेदना भी नहीं सताती। सांसारिक मोहमाया के बन्धन तो प्रायः भूल ही जाते हैं।

उस बुजुर्ग ने कथा को आगे बढ़ाते हुए बताया कि इस लुप्त पड़े स्थान पर फिर से हलचल तब आरम्भ हुई जब मुसलमानों के जुल्मों सितम के कहर से सहमें तथा धर्म रक्षा के प्रबल इच्छुक कुछ कबीले यहां आकर बस गये। उन दिनों यह सुरंग नाले का रुप ग्रहण कर चुकी थी। नाले में जल धारा देखकर उन कबीलों ने इस सुरंग के पास ही श्मशान घाट के लिए स्थान का चयन किया। मुर्दे यहां जलाये जाने लगे। सनातन धर्म की मान्यता के मुताबिक अस्थियां हरिद्वार जाकर प्रवाह करनी पड़ती है। लोग बड़े गरीब थे। आवागमन का कोई साधन न था। देश में आपाधापी थी। उस समय के लोग धर्म भीरु थे। अपने धर्म को निभाने के लिए अपना सब कुछ ईश्वर को अर्पणकर देते थे और सुखणें करते थे। ऐसी ही सुखण मुर्दा जलाते समय महादेव से की कि हे भोले शंकर ! मुझे इस प्रिय बन्धु की अस्थियां हरिद्वार जाकर प्रवाह करने की शक्ति प्रदान करें। उस समय उस सुखण करने वाले बूढ़े को क्या पता था कि महादेव स्वयं निराकार रुप में सुरंग के अन्दर विराजमान है। महादेव जी ने स्वप्न में उस बूढ़े को हीं नहीं अपितु अन्यों को भी साक्षात दर्शन देकर आदेश दिया कि सुरंग के अन्दर जो छिद्र कुंड है उसका जल साक्षात् मेरी जटाजूट से निकली गंगधार का ही अंश है और मैं इस धारा के साथ निराकार रुप में गौरी सहित विराजमान हूं। अतः तुम लोग इस स्थान को हरिद्वार का अंग समझो और अस्थियां यहीं प्रवाह करके निश्चित हो जाओ। गरीबों में यह परम्परा चल पड़ी और साथ ही छिद्र महादेव के प्रति आस्था पक्की हो गई। परन्तु वह गरीब लोग इस स्थान की सुरक्षा तथा निर्माण के लिये कुछ न कर सके। स्थान जैसा था वैसे ही रहने दिया गया बल्कि इसकी दशा बिगड़ती ही गई।

जैसे-जैसे आवागमन के साधन सुगम हुये, क्षेत्रों में सम्पर्क बढ़ा लोगों में धार्मिक भावनाओं के प्रति विश्वास में कमी आती गई, बदलते युग की अपनी ही परम्पराओं ने भावनाओं को ठेस ही पहुंचाई हो साथ ही मानवीय मानसिक शान्ति भी छिन्नभिन्न होती चली गई। वैसे यह तथ्य आज भी सही पाया गया हैं कि छिद्र महादेव की गंगाधारा का जल हरिद्वार के गंगाजल की भांति कभी खराब नहीं होता। छिद्र महादेव की सुरंग के प्रवेश द्वार पर वह स्थान जहां पाण्डव विश्राम करते

व अपनी झोलियां लटकाते थे सुरक्षित है झोलियां पत्थर बन चुकी है व उनके चिन्ह देखे जा सकते हैं।

महात्मा दुर्गा गिरी का कथन है कि उन्होंने इस स्थान पर आध्यात्मिक उपलब्धि पाई है। उन्होंने इस स्थान को रमणीक बनाने के लिए 300 पेड़ लगाये हैं। भंडारे का आयोजन भी शुरु हो गया है। खोज के आधार पर जहां छिद्र महादेव के साथ उसके उद्‌भव की धार्मिक कथा जुड़ी है वहां इतिहास के अन्वेषण का अध्याय भी जुड़ा है। संस्कृति की इस धरोहर की रक्षा हमें करनी होगी।

गांव व डा० नगरोटा बगवां,
कांगड़ा (हि० प्र०)

कांगड़ा कला और ब्रज संस्कृति

O चक्रधारी शास्त्री

कांगड़ा ब्रज भूमि से कोई चार सौ मील दूर है। कांगड़ा में पहाड़ी भाषा बोली जाती है, जोकि डोगरी से मिलती जुलती है। कांगड़ा के पश्चिम नूरपुर आदि में प्रायः डोगरी ही बोली जाती है। ब्रज से इतनी दूरी पर कांगड़ा में ब्रज रसके रसिक कलाकार, चित्रकार, कवि, मूर्तिकार उत्पन्न हुए हैं। नूरपुर के सुल्तानी गांव जोकि अपना बहुत पुराना पैतृक गांव था, के बाबा कुंज बिहारी दास एक शती तक ब्रज में रहे। पच्चीस वर्षों तक वह बरसाने के राधा जी के मन्दिर में रहे। सर्वप्रथम अमृतसर से मां आनन्दीवाई (काश्मीरी) के साथ वृन्दावन पधारे, वहीं उनके साथ आजीवन रहे। माता जी की गोदी में राधा कृष्ण की युगल जोड़ी आज भी आनन्दी बाई मन्दिर में देखी जा सकती है। बाबा वर्षों तक मन्दिर में समाज गान किया करते थे। अत्यन्तवृद्ध और कुबड़े होने पर भी वे नित्य वाद्य यन्त्रों के साथ लीला गान करते निखार्फ माधुरी ग्रन्थ में बाबा जी का उल्लेख है। मैं वर्षों तक उनके सान्निध्य में रहा वे मेरे चाचा थे, उनके एक अन्य सहयोगी बाबा किशोरी दास जाछ गांव नूरपुर के रहने वाले थे, वे भी ७०-८० वर्षों तक बरसाने में गहवर वन में रहते थे। मैंने उनके पास भी दो-तीन राते काटी हैं और रात को गहवर वन निवास का आनन्द प्राप्त किया था।

चित्रकला : बसोहली चित्रकला में 'गीत गोबिन्द' को श्लोकानुसार चित्रित किया गया है। यह चित्रकार 'माणकू' था, उनकी चित्रकला अत्यन्त सजीव है। मानो जयदेव के हृदय को 'माणकू' ने छुआ है। इसी प्रकार बज़ीर करतार सिंह संग्रहालय में भी चित्र देखे जा सकते हैं, जो हमने बम्बई संग्रहालय में भी देखे थे। गुलेर-नूरपुर, सुजानपुर की चित्रावलियां ब्रज की छाया लिये हैं। नूरपुर के ब्रज राज स्वामी मन्दिर के भित्तिचित्र ब्रज लीलाओं की मुंह बोलती तस्वीर है। इन चित्रों में वस्त्रों की जालियां पलकों के बाल सूक्ष्म रूप से देखे जा सकते हैं।

कामरेड ए. के गोपालन को एक बार लेखक ने ये चित्र दिखाये, तो वे अवाक् रह गये। मोरार जी देसाई, डॉ० कर्ण सिंह भी उक्त चित्रों को देख चुके हैं।

साहित्य सृजन :—साहित्य सृजन में नूरपुरी बोली में विशेष इतिहास उपलब्ध नहीं है। कुछ भाटो गम्भीर राय आदि के पद कवित्त अवश्य कहीं-कहीं उपलब्ध हैं। गुलेर में लिखित इतिहास अवश्य कुछ उपलब्ध है. परन्तु गुलेरी नूरपुरी में अन्तर है। यद्यपि पहले ब्रज भाषा में ही कवि

लिखते रहे हैं। 'मिजो' का प्रयोग कांगड़ा, पालमपुर, हमीरपुर, चम्बा में अहं वाचक होता है नूरपुर में 'मिजो' के स्थान पर मैकी का प्रयोग होता है डोगरी में मिकी, मिगी,मिन्ही कहा जाता है मैं को अऊं-औहु-हौं डोगरी, हमीरपुरी, चम्बयाली में कहा जाता है। अहं का अपभ्रंश है - ब्रज भाषा में हौं का प्रयोग खुल कर होता है।

हौं तो धाय तिहारे सुतकी ..
तू दयालु दीन हौं तू दानी हौं भिखारी ..

ब्रज भाषा के बहुत से शब्द नूरपुरी में प्रयुक्त होते हैं। २०-२५ वर्ष पूर्व अक्षय कुमार जैन ने नव भारत टाईम्स में डोगरी और पहाड़ी को पंजाबी का अपभ्रंश लिखा था। हमने उसका खण्डन किया था। जैन ने हमारा पत्र टाईम्स में छाप दिया था और अपनी भूल स्वीकार की थी। तारागढ़ का किला जो बकलोह छावनी के पास चक्की नदी तट पर स्थित है, एक पूर्वी जाति रहती है जो ब्रज भाषा बोलती है। ये लोग कभी सैनिक थे। गुजरों की भाषा भी ब्रज भाषा है। यह घुमन्तू जाति (अभिप्रायः ब्रज, घुमन्तू जाति से सम्बन्धित है) हिमाचल जम्मू में देखी जा सकती है। ब्रज शब्द का अर्थ भी घुमन्तू है। ये लोग भी कभी ब्रज से आये होंगे और मुसलमान बन गये, हिन्दू गुजर भी कहीं-कहीं हैं।

नन्दगांव से महावन गोकुल ३० मील है। नन्दगांव नन्द का गांव था और महावन में अभी भी ८४ खम्बों वाला नन्द भवन देखा जा सकता है। हमने अपने अठाईस वर्षीय ब्रज वास तथा यात्रा काल में ब्रज संस्कृति का सूक्ष्म अवलोकन किया हुआ है—जिसका चित्रण हमारी खड़ी बोली की मौलिक रचना रस चन्द्रिका में देखा जा सकता है। गीत गोविन्द का भी नूरपुरी बोली में रूपान्तर हमने १२-१४ वर्ष पूर्व किया था। नूरपुरी बोली के क्रियापद चली गिआ, आई गिआ, ब्रज भाषा के क्रियापद हैं-अतः कांगड़ा संस्कृति पर ब्रज संस्कृति की छाप असन्दिग्ध है।

सम्पादक, कल्पद्रुप,
नूरपुर, कांगड़ा

किला बैरकोट

O मोती लाल घई

मण्डी रियासत का इतिहास कोई आठ सौ पूर्व अर्थात् सन् 1151 के पश्चात् आरम्भ होता है। इससे पहले सुकेत रियासत थी। लेकिन साहूसेन (1100 A.D.) का छोटा भाई बाहूसेन पारस्परिक झगड़े के कारण कुल्लू में मंगलौर नामक स्थान पर ठहर गया और यहीं से मण्डी रियासत का आधार बनना प्रारम्भ हो गया था। हिमाचल प्रदेश के सारे इतिहास पर दृष्टि डालने से पता चलता है कि आरम्भ में यहां छोटे-छोटे रजवाड़े, राणे और ठाकुर थे जिनकी अपनी-अपनी ठकुराईयां थी। इन रजवाड़ों, राणों और ठाकुरों में आपसी खिंचातानी और छीना झपटी चलती रहती। कभी कोई किसी की ठकुराई को जीत लेता और कभी कोई। सन् 1151 के पश्चात् यह समस्त ठकुराईयां सिमटती गई और धीरे-धीरे मण्डी रियासत ने राज्य का रूप धारण कर लिया। भौगोलिक दृष्टि से यह सारा राज्य पर्वतीय ही है। केवल बल्ह का क्षेत्र ही समतल और उपजाऊ रहा है। यह क्षेत्र भी पहले सुकेत रियासत के अधिकार में था।

मण्डी राज्य में तीन प्रमुख पर्वत श्रेणियां पड़ती हैं। नरगूधार, घोघड़धार और सिकन्दरधार। सिकन्दरधार ऐहजू के पास से आरम्भ होकर बिलासपुर की सीमा दरिया सतलुज को स्पर्श करती हुई समाप्त हो जाती है। कांढ़ापतन के पास ब्यास नदी इस धार को दो भागों में विभक्त करती है। वहां से आगे यह धार पिंगला थौना और तुंगल आदि क्षेत्रों के बीच से निकलती हुई रिवालसर के ऊपर से नैना देवी होती हुई सिकन्दरे तक पहुंचती है। सिकन्दरे के बाद यही धार बैंरकोट धार के नाम से जानी जाती है। इसका आखिरी सिरा मरयारी देवी माना जाता है। इसके नीचे डैहर का विस्तृत क्षेत्र और साथ सतलुज नदी। सिकन्दर धार का नाम सिकन्दर लोधी (1498-1517) के नाम पर पड़ा है। लोधी वंश का यह शासक दिल्ली से चलकर पंजाब को रौंदता हुआ मण्डी रियासत में प्रवेश कर गया था। उस समय मण्डी रियासत का शासक अजबर सेन था।

सिकन्दरे के पास ठहरने के कारण ही इस धार को सिकन्दर धार कहा जाने लगा। यहां उसने एक किले का निर्माण भी आरम्भ किया था। लेकिन बुनियादें ही बन पाई और उसे यहां

से कूच करना पड़ा। किले की यह बुनियादें कुछ वर्ष पूर्व तक विद्यमान थी लेकिन अब यहां खेत बन जाने के कारण उनका नामोनिशान मिट चुका है। लोधी के नाम से ही यहां एक गाँव बसा था जो आजकल लेदा के नाम से पुकारा जाता हैं। यह स्थान एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र बनता जा रहा है। यहां एक प्रार्थमिक पाठशाला, आयुर्वेदिक चिकित्सालय, पशुचिकित्सालय, वन, जनस्वास्थ्य, विद्युत विभाग के कार्यालय, सहकारी उपभोक्ता भण्डार व पंचायत घर आदि सभी कुछ हैं। कुछ दिन पूर्व यहां एक ग्रामीण बैंक भी खुल चुका है। यहां वन विभाग द्वारा एक बिश्राम गृह का निर्माण भी किया गया है। मण्डी और सुन्दरनगर से हर रोज यहां चार पाँच बसें आती रहती हैं। मण्डी यहां से चालीस कि. मी. और सुन्दर नगर कोई पन्द्रह कि. मी. के लगभग है।

जन श्रुति के अनुसार जब सिकन्दर लोधी यहां से वापिस हुआ तो उसके खजाने का एक बड़ा भाग यहीं दबा पड़ा रह गया था। सिकन्दरे के पास एक बड़ी चट्टान थी जिस पर फारसी में यह शब्द अंकित थे" सोने का घोड़ा चांदी का सवार, न आर न पार," लेकिन अब सड़क निकल जाने के कारण यह चट्टान भी खत्म हो चुकी है। कहते हैं लोधी के वापिस होने के काफी साल बाद कांगड़ा की तरफ के कुछ कुम्हार यहां आकर रात को ठहरे। अचानक उन्हें खजाने का कुछ भाग मिल गया। उसे खच्चरों पर लाद कर वे रातों रात यहां से भाग गए। उसके बाद भी लोगों को आस पास के क्षेत्र में दबा हुआ धन और चांदी के सिक्के प्राप्त होते रहे हैं। गत दो वर्ष पूर्व भी यहां स्कूल के पास खुदाई करते समय ग्यारह ग्यारह ग्राम के ठोस चाँदी के सिक्के प्राप्त हुए थे। सिकन्दरे के आस-पास चीड़ के वन हैं दृश्य बड़ा आकर्षक है। ऊंचा स्थान होने के कारण दूर दूर की जगहें यहां से दिखाई पड़ती हैं। यहीं से दक्षिण की ओर मरयारी देवी तक वन विभाग ने जीप चलने योग्य सड़क बनवाई है। यह स्थान लेदा से कोई बारह कि.मी. है। बैरकोट का यह प्रसिद्ध किला मरयारी देवी से कोई दो कि.मी. पीछे है। समुद्रतल से इस स्थान की ऊंचाई कोई छः हजार फुट के लगभग होगी। किला एक ऊंचे शिखर पर बना है। दक्षिण तथा पश्चिम की ओर दुर्गम घाटियां हैं। उत्तर का बिल्कुल थोड़ा सा भाग और पूर्वी भाग ऊपर चढ़ने योग्य है। आस-पास का क्षेत्र कंटीली झाड़िबों से ढ़क गया है। किले से नीचे कुछ खेत हैं जहां मक्की, गन्दम और आलू हो जाते हैं। उससे नीचे चीड़ का घना जंगल लगा हुआ है। अब इस जंगल में देवदार भी काफी सीमा तक लग चुका है।

बैरकोट का यह प्रसिद्ध किला सुन्दर नगर के सामने पश्चिम की ओर कोई आठ दस मील के फासले पर दिखाई देता है। बीर सेन को सुकेत रियासत का संस्थापक माना जाता है। जो सन् 765 के पश्चात् गद्दी पर बैठा था। बीर सेन जैसा नाम वैसा ही वीर राजा था। उसने पहले शिमला की तरफ बाघल, कुनिहार, क्योंथल, धामी आदि कई ठकुराइयों को विजय किया। पूर्व की ओर उसने द्रैहट को जीत कर सराज की ओर अपने कदम बढ़ाए। जहां उसने श्री गढ़, रघुपुर, रायगढ़, माधोपुर, मगरू, मानगढ़, जलोड़ी, हिमरी, रायसन, गुडाह, फतेपुर आदि कई

गढ़ों पर अपना अधिकार कर लिया। उत्तर में उसने मनाली, लग, रूपी, सरी डुमरी आदि को अपने कब्जे में लेकर वापसी पर पण्डोह, नाचन, रियान, जुराहंडी, सतगढ़, नन्दगढ़ तथा चच्योट आदि कई गढ़ों पर अपना कब्जा कर लिया। फिर वह पश्चिम में सिकन्दर धार की ओर बढ़ा। हटली आदि ठकुराइयों को जीतने के पश्चात् उसने यहां एक किले का निर्माण किया। इस किले का नाम बीर सेन के नाम पर बीरकोट रखा गया। बाद में इसे बिहारकोट कहा जाने लगा फिर बिगड़ कर बैरकोट रह गया जो आज तक प्रचलित है। बीरसेन के समय सुकेत की राजधानी पांगना थी। मदन सेन (1240) के समय राजधानी लोहारा आ गई। करतार सेन (1520) के समय राजधानी करतारपुर बनाई गई जो अब पुराने बाजार के नाम से प्रसिद्ध है। विक्रम सेन (1748) ने बनेड़ को राजधानी के रूप में अपनाया जो अब सुन्दर नगर के नाम से ही प्रसिद्ध है।

बीर सेन द्वारा निर्मित यह किला सामरिक दृष्टि से बड़ा महत्व पूर्ण स्थान रखता था। ऊंची चोटी पर होने के कारण इस किले से सैनिक चारों तरफ की गतिविधियों पर नजर रख सकते थे। यह किला अपने आप में दुर्गम और अजेय माना जाता था। अन्दर प्रवेश के लिए केवल पूर्वी दिशा से ही काम लिया जाता था। 1200 वर्ष पूर्व बने इस किले को समय के अनन्त थपेड़ों ने खण्डहर के रूप में बदल दिया है लेकिन इसकी बाहरी प्राचीरें आज भी अपना मस्तक उठाए वैसी ही खड़ी हैं। यह विशाल प्राचीरें सैंकड़ों वर्ष पूर्व की वास्तुकला और शिल्प का अनुपम उदाहरण आज के युग के समक्ष पेश कर रही हैं।

यह किला अनुमानतः कोई आठ सौ फुट के घेरे में फैला है। इसकी बाहरी दीवारों की चौड़ाई दो से तीन फुट तक है। बीच कमरों की दीवारों की चौड़ाई इससे कुछ कम है। दीवारों में तराशे हुए पत्थरों का प्रयोग किया गया है। पत्थर दो फुट चार इंच लम्बे, एक फुट दो इंच चौड़े और एक फुट दो इंच तक ऊंचे हैं। बीच-बीच में कहीं-कहीं इससे भी बड़े पत्थरों का प्रयोग हुआ है। पत्थर अधिकतर नीले रंग के हैं। मजबूत और सफाई से तराशे गए हैं। इन्हें देखकर ऐसा लगता है मानों यह कुछ ही साल पहले लगाए गए हों। किले के अन्दर के कमरे गिर कर खण्डहरों में परिवर्तित हो गए हैं। अन्दर चारों तरफ घनी कंटीली झाड़ियां उग आई हैं। जिनके कारण अन्दर प्रवेश करना बड़ा ही दुष्कर हो गया है। अकेले व्यक्ति का अन्दर जाना खतरे से खाली नहीं। क्योंकि झाड़ियों के बीच कभी-कभी बाघ भी आनन्द के खुर्राटे लेता रहता है। एक अनुमान के अनुसार किले के अन्दर छोटे बड़े कोई सत्रह अठारह कमरे रहे होंगे। कुछ कमरे ग्यारह फुट लम्बे और दस फुट के लगभग चौड़े थे इसके बीच में नौ फुट की वर्गाकार दो बावड़ियां भी दिखाई देती हैं जो ऊपर तक मलवे से भर चुकी हैं। सम्भव है इनमें वर्षा का जल एकत्रित किया जाता रहा हो या फिर किले के अन्दर ही कोई स्वतः निकला हुआ चश्मा रहा हो जिसे बाद में बावड़ी का रूप दे दिया गया हो लेकिन अब यहां पानी के कोई भी चिन्ह विद्यमान नहीं। वैसे यह बात अप्रत्याशित सी लगती है क्योंकि किलों में बनी बावड़ियां देखने में नहीं आई परन्तु यहां हैं। एक छोटे कमरे में एक कुंआ भी है। जिसका व्यास चार पाँच फुट

के लगभग है। यह कुंआ भी अब सतह तक मलवे से भर चुका है। इससे यह अनुमान लगाना कठिन है कि यह पानी जमा करने के काम आता था या फिर किसी गुप्त मार्ग के रूप में प्रयोग किया जाता था। वैसे कमरे की स्थिति को देखकर ऐसा अनुमान लगता है कि यहां से कोई गुप्त मार्ग सुरंग के रूप में बाहर निकाला गया था। यहां आस पास के किलों में भी कुओं के रूप में कुछ ऐसी सुरंगें पाई गई हैं जिनके काफी नीचे से जमीन के अन्दर ही अन्दर सीढ़ियां बनी हुई होती थी। कुओं के बीच सात आठ फुट के फासले पर दो तीन इंच का ऐसा उभरा हुआ घेरा सा बना होता था जिसके ऊपर आदमी पैर रख कर दीवारों का हाथ से सहारा लेकर खड़ा हो कर बाहर निकल सके। इस घेरे के सात आठ फुट नीचे एक कुएं की दीवारों में एक छोटा सा दरवाजा होता था वहीं से सीढ़ियां जमीन के अन्दर की ओर आरम्भ हो जाती थीं। ऐसा कुछ एक किलों के अन्दर देखा गया है। इससे यह बात सिद्ध हो जाती है कि आपातकालीन स्थिति में इन सुरंगो का अवश्य प्रयोग किया जाता था और युद्ध की स्थिति में तो इनका कार्य और भी अधिक महत्व पूर्ण हो जाता था। आमतौर पर यह कुएं ऐसे अन्धेरे स्थान के पास बनाए जाते थे जहां आने वाला अपरिचित व्यक्ति या शत्रु धोखा खा जाए और उसमें गिर कर कैद हो जाए।

दीवारों के बीच में चारों ओर दो अढ़ाई फुट के झरोखे से बने हैं जिनमें एक-एक सुराख बाहर की ओर रखा गया है यह सुराख शत्रुओं पर निगाह रखने के काम आते थे। सैनिक इन सुराखों से बाहर की ओर झांकते रहते और शत्रु के नज़र आते ही बन्दूकों के मुख बाहर की ओर निकाल कर निशाना साधते। इस जमाने में लोहे की बनी तोड़बन्द बन्दूकें हुआ करती थी जिन्हें स्थानीय कारीगर तैयार करते थे। इनमें गोली बारूद भरकर जलती लकड़ी से आग लगाई जाती थी। किले की दीवारों का निर्माण करने के लिए चूने और पक्की ईंटो से बनी सुर्खी का प्रयोग किया जाता था। बुजुर्ग लोग ऐसा भी बताते हैं कि इसमें माश भी पीस कर डाले जाते थे। ईंटों के मिश्रण से जो मसाला तैयार किया जाता था वह अति उत्तम होता था! इस मसाले की श्रेष्ठता तो इसी बात से आंकी जा सकती है कि सैंकड़ों साल पूर्व के लगाए पत्थर आज भी बड़ी दृढ़ता से निश्चित स्थान पर स्थिर हैं। सदियां बीत जाने पर भी यह अपने स्थान से बाल भर भी इधर से उधर नहीं हुए और न ही इनमें किसी प्रकार का अन्तर आया। निर्माण शैली की दृष्टि से हिमाचल के सभी गढ़ एक जैसी समानता लिए हुए हैं।

किले के पूर्वी भाग को छोड़कर शेष कहीं से भी बाहर आने जाने के लिए कोई दरवाजा या मार्ग नहीं है। ऐसा अनुमान लगता है कि पूर्वी दीवार के बीच एक दरवाज़ा था जो भूमि से सात आठ फुट ऊपर ही बना था। दरवाजे तक पहुंचने के लिए किसी प्रकार की पौड़ियां आदि भी नहीं बनी हुई हैं। यहां ऐसा कोई भी चिन्ह मौजूद नहीं। इससे ऐसा अन्दाजा लगता है कि किले में प्रवेश करने और बाहर निकलने के लिए किसी मजबूत सीढ़ी का प्रयोग किया जाता था जब आदमी या सामान अन्दर पहुंच जाता तो फिर सीढ़ी को भी अन्दर ही घसीट लिया जाता

होगा। इस तरह इस युग में यह किला बहुत ही सुरक्षित था। ये किले जहां सीमाओं की देखरेख और सुरक्षा के लिए प्रयुक्त होते थे वहीं इनका उपयोग रियासत के भण्डार गृह के रूप में भी किया जाता था। युद्ध सामग्री के अतिरिक्त इन में मोटा और टिकाऊ अनाज भी संग्रहित किया जाता था। अकाल की स्थिति में इन्हीं भण्डारों से आम जनता को अन्न उधार दिया जाता था। मण्डी रियासत में भी ऐसी प्रथा सत्रहवीं अठारहवीं सदी में आरम्भ कर दी गई थी वैसे ग्रामों में तो आज भी यह प्रथा मौजूद है। उधार दिए हुए अन्न का अगली फसल के समय चौथा भाग सवाई के रूप में ले लिया जाता था। इन किलों में त्यौहारों, उत्सवों तथा ब्याह शादियों के अवसर पर राज महलों को भेजने के लिए घी, दूध, लस्सी तथा अन्य सामग्री भी जनता से लेकर एकत्रित की जाती थी। किले का पूर्वी भाग कुछ ढलवानदार है। पश्चिमी भाग की ओर नीचे हटली का क्षेत्र पड़ता है। बीर सेन ने हटली को जीतने के बाद सीर खडड तक के क्षेत्र को अपने अधिकार में लेकर कांगड़ा के साथ अपनी सीमा निर्धारित की थी। यहां भी उसने एक किले का निर्माण किया था। लेकिन आज यह पता लगाना बड़ा कठिन है कि वह किला किस स्थान पर था। क्योंकि सीर खड्ड के आस पास आज ऐसा कोई निशान मौजूद नहीं।

1688 में सिद्ध सैन ने सुकेत के कई भागों पर आक्रमण किए और नाचण तथा हटली आदि के कई क्षेत्र छीन लिए। 1690 में उसने मस्तगढ़, मदन गढ़ और धगियारा आदि के गढ़ों पर अपना अधिकार कर लिया। 1698 में उसने राय पुर गढ़ भी सुकेत से छीन लिया। फिर 1706 में सिद्धसैन ने हटली को दूसरी बार जीत लिया। इस समय सुकेत का शासक जीत सेन था। इस तरह बैरकोट का किला मण्डी रियासत के अधीन कई सालों तक रहा। नाचण आदि कई गढ़ों और बैरकोट को जीतने के बाद सिद्धसैन ने कहा था "मकान की दीवारें मैंने खड़ी कर दी हैं। यदि मेरे वंश में आगे कोई वीर शासक पैदा होगा तो दीवारों के ऊपर की टोपी वह स्वयं रख लेगा। इस आक्रमण में कहलूर का राजा भीम चन्द भी सिद्धसैन की सहायता के लिए आया था। बैरकोट और हटली के साथ सिद्धसैन ने मरयौली भी सुकेत रियासत से छीन लिया था। बाद में बैरकोट और हटली तो सिद्धसैन ने स्वयं रख लिए और मरयौली का क्षेत्र कहलूर के राजा भीम चन्द को दे दिया।

1788 में मण्डी राज्य की गद्दी पर ईश्वरी सेन बैठा। मूरक्राफट के शब्दों में "ईश्वरी सेन एक कम बुद्धि वाला और भीरु राजा था। इसने अपने राज्य में बन्दूक चलाने पर प्रतिबन्ध लगा रखा था।" उस समय कलेसर मियां मण्डी राज्य का एक प्रभावशाली बजीर था। ईश्वरी सेन के शिक्षक और संरक्षक पण्डित बैरागी थे। कुछ समय तक वही राज्य का संचालन करता रहा। लेकिन मियां लोग उसके मार्ग में अनेक बाधाएं खड़ी करने लगे। उसने कांगड़ा के राजा संसार चन्द से सहायता मांगी। संसार चन्द एक बहादुर और न्यायप्रिय राजा था। कलेसर द्वारा सताया एक निर्धन व्यक्ति विधिया भी मण्डी से भागकर संसार चन्द की शरण में चला गया और

मण्डी में फैली अराजकता का वर्णन करके रियासत को अपने हाथ में लेने के लिए कहा। 1792 में अच्छा अवसर पाकर कांगडा के राजा संसार चन्द ने मण्डी रियासत पर आक्रमण कर दिया। मण्डी में लूटपाट करके वह ईश्वर सेन को भी कैद करके नदौण ले गया जहां उसे बारह साल तक रखा गया। इस आक्रमण में सुकेत और कुल्लू के राजा ने भी संसार चन्द की किसी न किसी रूप में सहायता की थी। संसार चन्द ने मण्डी रियासत के तीन और क्षेत्र अनन्तपुर, हट्ली और चुहार भी अपने अधिकार में ले लिए। अनन्तपुर को संसार चन्द ने अपने पास ही रखा। चुहार कुल्लू के राजा को दे दिया और हट्ली का क्षेत्र सुकेत को दे दिया। इस समय सुकेत रियासत में विक्रमसैन का राज था। इस तरह बैरकोट का यह प्रसिद्ध किला एक बार फिर सुकेत रियासत के अन्तर्गत आ गया और स्वतन्त्रता प्राप्ति तक उसी रियासत में रहा। इस किले में सुकेत रियासत के सैनिक रहा करते थे। बारह बजे जब सुकेत से तोप दागी जाती तो यहां से भी बन्दूक या तोप का धमाका किया जाता था। उन दिनों ग्रामों में घड़ियां तो होती नहीं थी यदि कहीं एक आध टाईम पीस हुआ भी तो लोग इस धमाके से समय का मिलान करते थे।

इस स्थल तक पहुंचने के लिए मण्डी या सुन्दरनगर से बस द्वारा पहुंचा जा सकता है। यहां से यह स्थान दस बारह कि. मी. है। सिकन्दर धार से मुरारी देवी तक जीप चलने योग्य मार्ग बन चुका है। सड़क से किले तक कोई एक कि. मी. की चढ़ाई चढ़नी पड़ती है। किले के आस पास कुछ गांव भी हैं। जंगल में बाघ, कक्कड़ और जंगली मुर्गे पाए जाते हैं। दृश्यावली आकर्षक है। मुरारी देवी समुद्रतल से कोई साढ़े छः हजार फुट ऊंची है। कहते हैं रात को यहां से शिमला की बिजली दिखाई पड़ जाती हैं। मार्च से नवम्बर तक यह स्थान पर्यटकों के लिए सर्व श्रेष्ठ है। मुरारी देवी और गोदड़िया बाबा पवित्र देवस्थल हैं। हजारों श्रद्धालु प्रतिवर्ष यहां आते रहते हैं। मुरारी देवी में वन विभाग द्वारा निर्मित एक सुन्दर विश्राम गृह भी है। खाने पीने की सामग्री साथ ले जानी पड़ती है क्योंकि यहां आस पास कोई भी दुकान आदि नहीं।

ग्राम व डा० गुरकोठा,
जिला–मण्डी।
हिमाचल प्रदेश-175036

लाहुल व स्पिति के लोकजीवन की एक झलक

O चन्द्रकान्त

लाहुल स्पिति की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि बहुत भिन्न रही है। आज यह हिमाचल प्रदेश का एक अभिन्न भाग है जबकि कभी 1846 से पूर्व स्पिति लद्दाख के अधीन था तत्पश्चात् इसका कुल्लू सब-डिविजन में मिलाया जाना भी एक रोचक विषय रहा है। 1963 में पंजाब राज्यकाल में इसे ज़िला बनाया गया था तथा 1966 में यह ज़िला राज्य पुनर्गठन के फलस्वरूप हिमाचल में सम्मिलित हुआ। लाहुल स्पिति जिले का क्षेत्रफल कहीं तीन हजार वर्गमील से अधिक है यद्यपि इसकी जनसंख्या क्षेत्र की तुलना से कोई प्रतिशत नहीं कही जा सकती। इसे हमारे संविधान में अनुसूचित क्षेत्र माना गया है और यहां रहने वाली बौद्ध, स्वांगला, गद्दी जातियां अनुसूचित जातियां घोषित की गई हैं।

लोक जीवन की झलक हमारे उठने-बैठने, खाने-पीने, ओढ़ने, बिछौने की साधारण बातों से लेकर शिल्पकला, कारीगरी, अर्थनीति, राजनीति तथा हमारे समाज के संगठन का विस्तृत इतिहास और जल मार्ग, वायुमार्ग आदि में दिखाई देती है। लाहुल और स्पिति में बौद्ध लोगों का रंग रूप अधिकतर मंगोलों की तरह है और तिब्बति भाषा, वेशभूषा और खानपान, उठना-बैठना अधिक वैसा ही है, इसका कारण इसकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि है। लाहुल में (सुआंग) स्वांगला अर्थात् आर्य नस्ल के रंग रूप वाले लोग ब्राह्मण व हरिजनों की जातियों में से है। लाहुल के दो अर्थ बताए जाते हैं ल्हा-युल अर्थात् देवताओं का देश और लायुल नीचे का देश। जबकि स्पिति को निघारण तथा हमपिती भी कहते हैं अर्थात् मध्य का देश। यह बहुत सा पठारी भूमि वाला है। दोनों तिब्बत के दक्षिण व मध्य दक्षिण में है। यदि लाहुल को देवताओं का देश कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी क्योंकि यहां की सबसे ऊंची चोटी शिखर घेपङ चूड़ा का देवता घेपङ है जो कुल्लू के जमलू देवता का भाई है जिसे जमदग्नि ऋषि कहा जाता है तथा तिब्बति लोग इसे जगरंग के नाम से जानते हैं। यद्यपि यह नृवंश विज्ञान का विषय है तथा इस पर विविध रुप से अनुसंधान किया गया है, इसके अतिरिक्त त्रिलोक नाथ का मन्दिर वहां के देवता होने का साक्षी है। इस प्रकार स्थान-स्थान पर देवता गोनपा में या मन्दिर में स्थापित है। मुझे क्योटो गांव (स्पिति)

में एक गोनपा के अन्दर एक प्रथा निभाते हुए लोगों से पता लगा कि इस गोनपा के अन्दर मन्दिर की भान्ति देवता भी स्थापित है। स्पिति में ही तावों गोनपा में जिसे, "लोचा रिम्पोछे" कहते हैं कृष्ण भगवान (वंशी वाले) का चित्रण है। कहते हैं कोई लामा मथुरा में कई वर्ष रहा था और उसका प्रभाव इन दूरवर्तीय क्षेत्रों में भी पहुंच पाया है। सार यह है कि इसे देवी देवताओं का देश कहने में कोई अतिशयोक्ति नहीं। भगवान बुद्ध को यह सांझे कहते हैं। जैसा कि तिब्बत में बुद्ध मत प्रचलित है और बड़े-बड़े गोनपा स्थित हैं, लाहुल में भी कई गोनपा हैं और स्पिति में भी 'की' और 'ताबो' के गोनपा प्रसिद्ध है। कई अन्य ग्रामों में भी गोनपा है, जिला राजधानी केलङ्ग के निकट कार्दङ्ग गोनपा बड़ा विख्यात है। यहां 150 के लगभग लामा रहते हैं। इसी प्रकार गुरु घण्टाल, शशुर गोनपा, मोलङ्ग गोनपा इत्यादि-इत्यादि हैं। आज से पच्चीस तीस वर्ष पूर्व एक स्वामी ब्रह्म प्रकाश ने हिन्दू धर्म के पुनर्गठन की रूपरेखा बांधते हुए मन्दिर भी स्थापित किये थे। लाहुल के अन्दर त्रिलोकनाथ का मन्दिर पुराने हिन्दूत्व का प्रतीक है। लाहुल को सरलता से जानने के लिए हम तीन घाटियों में बांटते हुए बताते हैं। एक चन्द्राघाटी जो नदी चन्द्रा के साथ साथ बसने वाले ग्राम जैसे खोखसर, सीसू, गोंधला, तांदी में भागा नदी आकर मिलती है फिर यह चन्द्र भागा (चनाव नदी) बनकर चम्बा जम्मू से होती हुई पंजाब के मैदानों को सैराब करती है तथा पाकिस्तान के सरगोधा, शीरकोट इत्यादि इलाकों में से जाती हुई सिन्ध नदी में जा मिलती है। तांदी से आगे जाहलमा, शांशा इत्यादि बड़े-बड़े ग्राम पटन वैली कहलाते हैं। तांदी से पीछे भागा नदी जहां चन्द्रताल से यह दोनों चन्द्राभागा निकलती है, गाहर वैली कहलाती है। इसमें लाहुल के मुख्यालय और पुराने-पुराने ठकुरांईयों के ग्राम गुमरंग, खांगसर इत्यादि-इत्यादि आते हैं। इस गाहर वैली में तिब्बती ढंग का बौद्ध धर्म प्रचलित है, जबकि पटन में आर्य समाज से प्रभावित परिवार भी है। गाहर में इसाई लोगों ने भी एक शताब्दी पूर्व मिशनरी काम किया है। परन्तु थोड़े ही परिवार इसाई बने जो आज फिर बौद्ध हो चुके हैं। रेवरेण्ड फ्रैंक ने 1853 में 'मेरेवियन' मिशन चलाया था। लेह लद्दाख में भी इसी 'मेरेवियन' मिशन ने कार्य किया है। 1949 में वहां मेरी रेवरेण्ड ड्राईवर से भेंट होने पर मुझे इस मिशन का पता लगा था।

जहां लाहुल में हिन्दू इसाई मत प्रचलित रहे हैं तो स्पिति में केवल बौद्ध मत ही प्रचलित है। वहां के दो विख्यात गोनपा 'की' गोनपा तथा 'ताबो' गोनपा वर्णनीय है। ऐसे तो हंसे और क्योटो, लोसर, केयुद, लांगजा, डंखर इत्यादि-इत्यादि और कई गोनपा हैं परन्तु अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति में 'की' और 'तांबो' हैं।

संसार के विख्यात विद्वानों में से प्रोफेसर टूची जो रोम के विश्वविद्यालय हिस्ट्री एण्ड कल्चर के मुख्य थे, ने कई मास वहां रहकर अपना अनुसंधान कार्य किया। यहां के लामाओं द्वारा बनाए गए थनका (फ्रेसको) इटली में पहुंचाए जो आगे उनके आने वाले शिष्यों के अनुसन्धान कार्य

के लिए सहायक रहे हैं। यहां की शिल्पी वास्तुकला भी साथ ले गए थे फिर यह तिब्बतोलजिस्ट कहलाए। 1939-40 के पश्चात् उनके एक शिष्य डेविड स्नेलग्रोव से मेरी मित्रता के कारण यह सब ज्ञात हुआ। 1953 में इन द्वारा ताबो गोनपा का अध्ययन किया। श्री कृष्ण भगवान की मूर्ति जिसे यहां ताबो में लोचा रिम्पोछे के नाम से जाना जाता है, किसी मथुरा में बसे लामा की कृति है।

स्पिति में मुख्य देवता तो भगवान बुद्ध 'सांझे' है परन्तु और देवी देवताओं की मूर्तियां भी साथ स्थापित देखी हैं। ग्राम क्योटों में मैं एक बार बाजे की ध्वनि सुनकर वहां के गोनपा देखने गया तो थोड़ी-थोड़ी बात समिश्रण की समझ में आई। रास्ते में पत्थरों की दीवारें जिसे हीनयान बौद्ध बिहारों में 'सीमा' रुप से बनाया जाता है स्पिति में ग्राम में पहुंचने से पहले आती है। बहुत से पत्थरों पर खोदकर लिखा होता है, "ओ मनी पदमे हुंम"। स्पिति के लोग इसका जल्दी-जल्दी में उच्चारण करते हैं—'ओमनी पेमे हुंम' साधारण जनता अर्थ तो नहीं जानती क्योंकि उन्हें केवल यही बताया गया है कि इसी से इनका उद्धार होगा। वास्तव में यह महत्वपूर्ण छः अक्षरों का मंत्र छः प्रकार के जीवन प्रवेश से मोक्ष प्राप्ति की इच्छा प्रकट करता है।

ओम् बोलते ही—देवताओं के अन्दर जन्म न हो (का द्वार बन्द हो) (देवल्हा)
मा – बोलते ही—असुरों के अन्दर जन्म न हो। (ला-मा-पिन)
ने– बोलते हैं—मानव में भी जन्म न हो।
पद – बोलते हैं—जानवरों में भी जन्म न हो।
में –बोलते हैं—प्रेतों में जन्म न हो (यी-द्मग)
हुम—बोलते हैं – नरक में भी जन्म न हो तिब्बति संस्कृति के अनुसार।
ओम् —श्वेत रंग भरकर
मा —नीला रंग भर कर
ने—पीला रंग भर कर
पद – हरा रंग भर कर
मे—लाल रंग भर कर
हुम—काला रंग भर कर

चक्र प्रस्तुत किया जाता है। जनसाधारण की धार्मिक वृत्ति यह होती है कि वह इसे मौलिक रुप से इसके अर्थ को न समझकर रट लेते हैं। एक बच्चे को जो लामा बना था रटते सुना :—

"सांझे ला कपसूछयो
छयो ला क्यपसू देम्पो
छयेदूला क्यपसू छयो"

इसका मुझे आभास हुआ कि यह हीनयान बौद्धों के पंचशील का अनुवाद ही होगा।

बुद्धम् शरणम् गच्छामि
धर्मम् शरणम् गच्छामि
संघम् शरणम् गच्छामि

क्योंकि सांझे यह बुद्ध को कहते हैं। छूयोला को धार्मिक पोथी मानते होंगे संघम् बौद्ध धर्म संघ को इन्होंने साधु (भिक्षु) ध्येन्दु मानकर नमस्कार किया है। तंत्रवाद लामाओं का इन आदिम जाति इलाकों में कई शताब्दियों से प्रभाव रहा है परन्तु अब परिवर्तन वेग से हो रहा है। लाहुल के लोग स्पिति के लोगों से कहीं आगे है। लाहुल में आज उच्चाधिकारी तथा शिक्षित युवक युवतियां अपने निकटतम क्षेत्र कुल्लू से कहीं अधिक है। विशेष सुविधा प्राप्त होने के कारण जीवन तीव्र गति से परिवर्तित हो रहा है। हां स्पिति लाहुल की अपेक्षा कई बातों से पीछे है। स्पिति में अपनी सामाजिक रुढ़ियां वहां के लोगों को इतनी तीव्रता से मुक्त नहीं कर पाई हैं जितनी लाहुल में। जनसाधारण लुगड़ी-छङ्ग-पौराणिक रीतियों से ग्रस्त है। बहुपति प्रथा लाहुल में बहुत घट गई है जबकि स्पिति में कई स्थानों में प्रचलित है। नैतिकता का प्रचार भी स्पिति की अपेक्षा लाहुल में अधिक है।

व्यापार के दृष्टिकोण से भी लाहुल के लोग इनसे कहीं अधिक आगे हैं। छोटे स्तर पर व्यापारिक कार्य निकटवर्ती किन्नर प्रदेश, छोमूर्ति, धेमचाक, रुपशू, हलने आदि से ऊन पशम का होता है।

लाहुल स्पिति में अब कृषि में भी उन्नति दृष्टिगोचर होती है। बीज का आलु लाहुल से बंगाल बिहार तक जाता है। जौ, गेहूं, मटर, स्पिति की मुख्य उपज है। आधुनिक कृषि अनुसंधान कृत उपजों में लाहुल निवासी पूर्ण रुचि से सुझावों को अपनाते हैं। सुधरी नस्ल के पशु पालन में यहां के लोगों की रुचि दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आर्थिक रुप से लाहुल के लोग पूर्ण सम्पन्नता की ओर बढ़ते हुए दृष्टिगोचर होते हैं। पिती (स्पिति का सूक्ष्म नाम जैसा पुकारा जाता है) कुल्लू सबडिविज़न की तहसील भी इसलिए कुल्लू से इनका सम्पर्क स्वाभाविक रुप से रहता है। लाहुल-स्पिति अलग ज़िला बन जाने से लोगों के जनजीवन में दौड़ धूप बिल्कुल खत्म हो गई है। अंग्रेजी राज्य तक लाहुल के राजा व स्पिति के नोनो (राजा) ऑनरेरी मेजिस्ट्रेट थे। जीवन साधारण था परन्तु अन्धकार भी काफी था। मुख्यतः लोग तिब्बति संस्कृति को मानने वाले थे। लाहुल में आर्य नस्ल के रंग रुप रखते हुए सुआंगला जाति के लोग भी हैं। पिती में केवल बौद्ध, लुहारः हेसी है। आज के लाहुल स्पिति और शताब्दी पहले के लाहुल स्पिति में आश्चर्यजनक अन्तर है। लाहुल में ठाकुरशाही, गोंधला, खांसर, गुमरंग और छोटी-छोटी जागीर वाले ठाकुर अपने-अपने हल्के में प्रभुत्वशाली थे। पिती में नोनो का राज पिछली शताब्दी तक रहा है। परन्तु स्पिति का इतिहास तो हमें बड़ा आकर्षित करता है।

कर्नल हारकार्ट के ऐतिहासिक खोज पत्रों से ज्ञात होता है कि सदियों पूर्व पितृ पर हिन्दू

राजाओं का राज्य रहा है जो सैन नाम वाले रहे हैं। उन्होंने सैन नामक राजाओं के सिक्के का वर्णन भी किया है परन्तु उसकी पुष्टि तो नहीं हो सकी है। हां निर्मण्ड (आऊटर सिराज) में परशुराम मन्दिर में एक ताम्रपत्र राजा समुद्रसेन का दिया हुआ सातवीं शताब्दी का अनुमानित किया जाता है। कुल्लू के ऐतिहासिक वर्णन में स्पिति के दो राजाओं का नाम आता है, उनमें से राजेन्द्रसेन ने कुल्लू पर चढ़ाई की और रुद्रपाल के राज्यकाल में इसे कर देने पर बाधित किया। ई० 600-650 की बात बताई जाती है, दो राजाओं के पश्चात् राजा प्रसिद्ध पाल ने एक लड़ाई में स्पिति पर विजय पाई रोहतांग दर्रे के निकट इस प्रकार अपना राज्य स्वतन्त्र किया। सम्भवतः चम्बा और स्पिति के राजाओं का एक गठजोड़ था जो लाहुल के रास्ते आक्रमण कारी हुए थे। इसी युग में स्पिति में कई मूल्यवान वस्तुएं प्राप्त हुई। यह माना जा सकता है कि राजा समुद्रसेन ने ही यह ताम्रपत्र परशुराम मन्दिर को दिया हो। प्रसिद्ध पाल द्वारा पराजित स्पिति पर फिर तिब्बति आक्रमण हुआ और बौद्धकाल से पहले का हिन्दू राज्य समाप्त हुआ। इस लड़ाई में कुल्लू के राजा संसारपाल ने लद्दाख की सहायता की और यह ग्राम उसकी सहायतार्थ प्राप्त हुए जबकि राजा चेतसेन के बेटों को जागीर दी गई। फिर दूसरा लद्दाख राज्य ई० 975, में स्थापित हुआ। ल्हासा के राजा लागदमी का पड़पोता स्कि इदि नीमा गोन ने अपना यह राज्य तीन बेटों में बांटा। एक को जास्कर (जाज्सकर) सबसे बड़े को लेह और मंझले को स्पिति दिया। लद्दाख के राजा ब्यांग छुम सेम्पा ने ई० 1000 में तावो गोनपा निर्मित बताया जाता है। दो सौ वर्ष से अधिक स्पिति तिब्बति और लद्दाखी राजाओं के अधीन रहा। 1590 तक भी लद्दाख का राज्य था। फिर बालती राज्य ने लद्दाख पर चढ़ाई की तब यह डंखर का किला 'छेरिंग नम्गयाल' के कब्जे में था। उसके बाद देचंग नम्गयाल उसका पुत्र स्पिति का अधिकारी बना। 1623 में एक पादरी श्रीसूत या अन्द्रादा ने छबरङ्ग की यात्रा की थी। उसके वर्णन से पता लगता है कि स्पिति पर गूगे राजा का आधिपत्य था जिसका महल छबरङ्ग में था। वह राजा पुराङ्ग से था। सांझे नम्मयाल के पोते के राज्यकाल में ल्हासा और लद्दाख के बीच लड़ाई छिड़ गई। मुगलों को लद्दाख जचता था और उसकी सहायता की तिब्बतियों को खदेड़ा गया वह पागोम झील तक भागे। मुगलों के लौटने पर फिर आए और देलगेज राजाओं से फैसले व सन्धियां की— इसी प्रकार गूगे प्रदेश और स्पिति इत्यादि ले लिए। देलगेज ने तिब्बती सेनापति की पुत्री से विवाह करके स्पिति दहेज में प्राप्त किया। ऐसा वृतान्त 1680 तक का बताया जाता है। इस प्रकार स्पिति लद्दाख के अधीन रहा। मुगलों के हस्तक्षेप के कारण पश्चिमी तिब्बत का ऊन का व्यापार काश्मीर के अधीन हो गया। तत्पश्चात् कुल्लू के राजा बानसिंह ने 1680 में स्पिति पर आक्रमण किया। स्पिति को कर देने पर बाधित किया। जोत भागा की तलहटी में सुमदो का किला और पिन नदी के निकट लिगटी खाट, राजा मानसिंह के बताए जाते हैं। सर एलड्रेन (Sir Aldrane) का विचार है कि यह किले राजा जगत सिंह ने बनाए हैं। फिर भी स्पिति पर ढीला

सा निमन्त्रण रह सका क्योंकि वहां आने जाने के साधन कठिन थे। कभी कर कुल्लू वाले लेते कभी लद्दाख में वह देते। थोड़े से गांवों का सरदार जिसे "गादवो" कहते हैं राज्य करता था।

1821 में एक यात्री मि० ट्रेबेक जो कि विलियम मूरक्राफ्ट के साथ यात्रा करने आया था लिखता है कि स्पिति वाले निकटवर्ती राजाओं को थोड़ा-थोड़ा कर चुपके से देते थे। डोगरा राज्यकाल में जनरल जोरावर सिंह ने लद्दाख पर चढ़ाई की तो अपने अधीनस्थ जनरल रहीम खां को स्पिति का अधिपत्य सौंपा गया। आगे रहीम खां ने अपने दामाद गुलाम खां को कार्य-वाहक रखा। रहीम खां के दामाद गुलाम खां ने स्पिति के गोनपाओं को लूट, बुतों की तोड़ फोड़ करके धन एकत्र किया। परन्तु उसी वर्ष महाराजा गुलाब सिंह के साथ जनरल जोरावर सिंह ने पूर्वी तिब्बत पर चढ़ाई के लिए कूच किया। गुलाम खां भी साथ था। इसमें जोरावर सिंह को पराजय का मुंह देखना पड़ा और तिब्बत में मारा गया। उत्तर प्रदेश के उत्तर में "बड़ा होती" के पठारी भाग में एक यादगार (छोर्तन) है जिसमें जनरल जोरावर सिंह की खोपड़ी रखी बताई जाती है।

कई वर्षों में अंग्रेजों की सन्धि सिक्ख राज्य से हो चुकी थी। उसके अनुसार सतलुज से रावी के बीच के इलाके अंग्रेजों के अधीनस्थ हुए थे और काश्मीर अंग्रेजों ने महाराजा गुलाब सिंह को बेच दिया था। परिणाम स्वरूप लद्दाख राज्य भी डोगरा राज्य में आ चुका था। लद्दाख का यह स्पिति अंग्रेजों ने तबादला करके कुल्लू डिवीज़न में डाला क्योंकि उन्हें ऊन प्राप्ति वाले ज़िलों, चांग थांग इत्यादि जाने का सुगम मार्ग यही था। 1864 ई० में जनरल कनिघंम ने तथा उनके सहायक मिस्टर वांस एंग्रीव (Mr. Vans Angriev) ने तिब्बत के साथ सीमा निर्धारित की। बारालाचा पास से पश्चिम में लिगटी के मैदान तक यह रेखा फैली है। मि० एजर्टन जो 1864 में ज़िला कांगड़ा के ज़िलाधीश थे छूरूब का वर्णन देते हैं। यह छः गांव (टोचो चुल टुक) स्पिति के निकटवर्ती महत्वपूर्ण हैं जिनमें छूरूव, सुमकल सुमरा बारबनावं खुरिक इत्यादि आज भी सामयिक महत्व रखते हैं। भले ही कोई युद्ध तो नहीं हुआ है परन्तु सीमा महत्वपूर्ण है रुपशू हलणे, छोमूर्ति, धेमचोक इत्यादि भारत चीन के सीमावर्ती क्षेत्र हैं। 1962 की भारत चीन की लड़ाई ने सभी अन्तर्राष्ट्रीय देशों को भी सचेत किया है।

हिमालय कभी रक्षक था तो आज रक्षणीय हो गया हैं। कारण इसके अन्दर बसने वाली जातियों की जीवन गाथा की झलक। उनकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व दैनिक प्रगति, भौगोलिक आर्थिक, सामाजिक स्थिति। आवश्यकता है यहां के जनजीवन में आर्थिक सुधार के साथ-साथ नैतिक सुधार और राष्ट्रीयता की समझ हृदयगत करवाने की तथा नैतिक शिक्षा दिलवाने की। उर्दु के कवि ने कभी युवकों पर लिखा है "बहे जाते हैं बहाए जाते हैं यह तिफले नादान"।

1960 में मुझे ट्राईवल कमीशन के चैयरमैन श्री यु. एन ढेवर (ढेवर भाई) दाहिया भाई तथा श्री धर्मदेव शास्त्री के साथ लाहुल व स्पिति जाकर यहां के जनजीवन की स्पष्ट झलक दिखाने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रकाशित रिपोर्ट में आश्रम स्कूल खोलने तथा नैतिक शिक्षा के प्रसार के मेरे सुझाव रिपोर्ट में प्रकाशित हुए थे तथा उसके पश्चात् शिक्षा के प्रचार व प्रसार के लिए पूरी सुविधाएं प्रदान की गई।

बौद्ध धर्म की जीवन रेखा ने इधर और ही ढंग का जीवन दर्शाया है। भगवान बुद्ध ने मानसिक दासता दूर करने का प्रयास किया है परन्तु रुढ़िवादिता के साम्राज्य ने उस ध्येय तक नहीं पहुंचाया। इन क्षेत्रों में यहां का जलवायु अतिशीतल होने के कारण ग्रीष्म ऋतु में जो कुछ बीज बोया जाता है तदानुसार फल पा सकते हैं। लोग उत्साही हैं यही गुण बड़ा है। इन्ही तीस वर्षों में काफी परिवर्तन जीवन स्तर में दृष्टि गोचर होता है। आर्थिक स्थिति तथा परिवहन की सुगमता से लोगों के मकानों, पहरावों, खाने पीने में परिवर्तन विशेष है। इसकी अपेक्षा हमारे निकटवर्ती कुल्लू के बहुत से भाग पिछड़े हैं। प्राकृतिक रुप से वन तो ऐसे नहीं हैं कि इनकी लकड़ी की आवश्यकता पूरी करें परन्तु अन्य सुविधाएं आज प्राप्य होती हैं जो कभी नहीं के बराबर थीं। लाहुल में सब्ज़ी बहुत लोग अब उगाते हैं और खाते हैं जो पहले रिवाज ही नहीं लगता था। फलों के वृक्ष भी लोगों ने पटन घाटी में लगाए हैं। वहां का गोल्डन डिलीशस सब का ध्यान अपनी ओर आर्कषित करता है। इस जलवायु में उपजों सम्बन्धी अनुसन्धान का कार्य पूरे जोरों पर है। खेती के अतिरिक्त दस्तकारी में भी लोगों की विशेष रुचि है। लोग ऊन व पशम की चादरें, पट्टियां बढ़िया पाएदार और सुन्दर बनाते हैं। जुराबें व पुलें महिलाएं चलते-चलते भी बहुत सुन्दर तैयार करती हैं। योब (दरी सी) गलीचे बुनने का कार्य भी करते हैं। लामा लोग तस्वीरें (थनका) बहुत सुन्दर बनाते हैं। यह सब बातें प्रकट करती हैं कि लोगों को विकास कार्य में विशेष रुचि है। वह दिन भी दूर नहीं जब यह सीमावर्ती लोग उन्नति की चरम सीमा पर होंगे। जब प्राकृतिक कठिनाईयां पार करने पर मानव उतरा है तो आशा भी झलक देती है। कहां लाहुल में साप्ताहिक हेलीकॉपटर उतरता है जिससे डाकतार की पूर्ण सुविधा है जबकि कभी कुल्लू से लाहुल पहुंचने में सात दिन लग जाते थे। स्पिति जाना तो भय दिलाना होता था। जनजीवन प्रगति की ओर है। लोगों के मेल-जोल से विचारों में भी परिवर्तन आ रहा है। जिला बनने पर अन्य लोगों का गमन भी हो पाता है और स्पिति में भी वेली, मजनूं के वृक्ष कहीं भोज पत्र के वृक्ष इस घाटी में प्रवेश करते-करते लुभावने लगते हैं। ऊंची-ऊंची चोटियां युवकों को आमन्त्रित करती हैं। खानों की खोज नीलम इत्यादि पाने का शौक दिलाती हैं।

अन्त में शरद ऋतु के जीवन की कड़वाहट भी ध्यान में आती है। जो लोग घूमने के आदी होते हैं दुःखी रहते हैं इसी कारण लाहुल-स्पिति के बहुत से लोग सर्दियों में घर से बाहर कामकाज

के लिए निकले होते हैं । एक वर्ग धार्मिक रीतियों के कारण घुमन्तु बन जाता है, जिन्हें हम गरजा खांगपा, पिती खांगपा या खुन्नु खांगपा कहते हैं । लाहुल स्पिति चीन से सम्बन्धित होते हैं । वहां बड़ा भाई जायदाद का अधिकारी होता है । तो दूसरे खाना बदोश हो जाते हैं । इस प्रकार यह कबीला नयां बनता जाता है । कुल्लू के पर्वतीय क्षेत्रों में बहुधा यह लोग अच्छा जीवन व्यतीत कर रहे हैं । इन जनजातियों के अतिरिक्त अनुसूचित जातियों के लोग भी इन क्षेत्रों में रहते हैं जो सरकारी सहायता पाने पर भी शायद अग्रगामी होना नहीं चाहते । आशा है कि अब शिक्षा के प्रसार से यह लाभ उठाने में सक्षम होंगे तथा भविष्य में यहां के जनजीवन में प्रशंसनीय परिवर्तन देखने को मिलेगा ।

गांव डोभी, डा० अखाड़ा बाजार,
कुल्लू पिन-175101

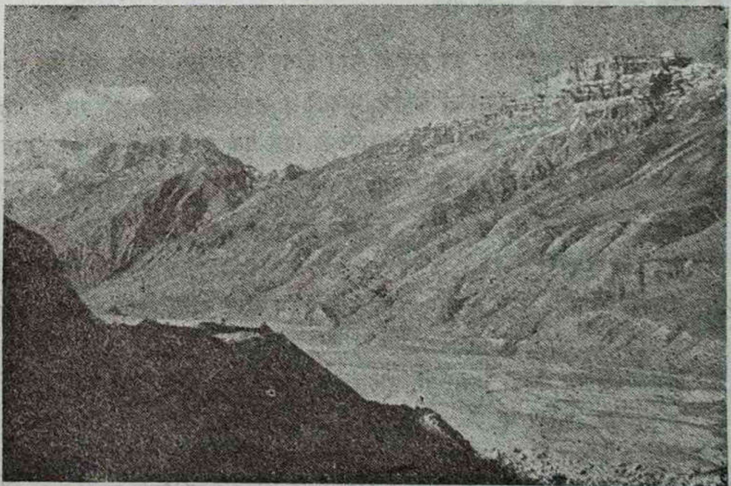

सिरमौर के लोकगीत

O बालक राम जसवाल

कौलांवाला भूड़ जिला सिरमौर की नाहन तहसील में स्थित है। यह नाहन से लगभग 25-30 किलोमीटर की दूरी पर शिवालिक की पहाड़ियों के बीच का भाग है, जिसकी पश्चिमी क्षेत्रीय सीमा हरियाणा के अम्बाला जिले के साथ लगती है। कौलांवाला भूड़ अपने आसपास के 10-15 कि. मी. के क्षेत्र का मध्यबिन्दु है जहां की लोक संस्कृति अपने में विशिष्टता संजोए हुये है। यह क्षेत्र लोककथाओं, रीति-रिवाजों, मेलों-त्यौहारों, पर्वों तथा लोकगीतों इत्यादि की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। अतः विशेष पर्वों, उत्सवों या अवसरों पर गाये जाने वाले कुछ लोकगीत प्रस्तुत किये जा रहे हैं जोकि स्थानीय लोक संस्कृति व जनजीवन से अहर्निशम् सम्पर्क स्थापित किये हुए हैं।

1. लड़के के जन्म पर गाये जाने वाले गीतः —

इस क्षेत्र में किसी परिवार में जब लड़का पैदा होता है तो उस समय जो गीत गाये जाते हैं उनको भयाईयां कहा जाता है। भयाईयां केवल स्त्रियों व लड़कियों द्वारा ही गाई जाती हैं। ये भयाईयां जन्मदिन से लेकर दसवें दिन अर्थात् दशूठन के दिन तक गाई जाती हैं। नवजात शिशु को होल्लर के नाम से पुकारा जाता है। अतः होल्लर की कुछ निम्नलिखित भयाईयां प्रस्तुत हैं : —

(i) होल्लर दादी बंडदी बधाईयां, होल्लर दादा के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले......................................।
होल्लर जनमा, मैं ए सुणया, कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले......................................।

(ii) होल्लर अम्मा बंडदी बधाईयां, होल्लर बाबल के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले......................................।
होल्लर जनमा मैं ए सुणया, कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले......................................।

(iii) होल्लर ताई बंडदी बधाईयां, होल्लर ताया के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले......................................।
होल्लर जनमा मैं ए सुणया, कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले......................................।

(iv) होल्लर चाची बंडदी बधाईयां, होल्लर चाचा के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले ....।
होल्लर जनमा मैं ए सुणया, कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले ....।

(v) होल्लर मामी बंडदी बधाईयां, होल्लर मामा के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले .... ।
होल्लर जनमा मैं ए सुणया कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले .... ।

(vi) होल्लर मासी बंडदी बधाईयां, होल्लर मौसा के कन दूव,
के होल्लर लोरी ले .... ।
होल्लर जनमा मैं ए सुणया कोई चांद पूनम कीए रात,
के होल्लर लोरी ले .... ।

इसी प्रकार उपरोक्त गीत गाती हुई औरतें व लड़कियां, बहिन, बुआ व अन्य सभी रिश्तेदारों को सम्बोधित करती हुई इस गीत को गाती रहती हैं।

गीत नं॰ 2 – कुणे मां होल्लर जावे री बंसी बजांदा आवे। कुणे मां .....।
होल्लर की अम्मा न्यू कह तुम खर्चो दान बतेरा।
होल्लर का बावल न्यू कह क्या हुण्डी होल्लर ल्यावे।
कुणे मां................................ ... .. ।
होल्लर की ताई न्यू कह तुम खर्चो दान बतेरा।
होल्लर का ताया न्यू कह क्या हुण्डी होल्लर ल्यावे।
कुणे मां होल्लर जावे री बंसी बजांदा आवे।

इसी प्रकार इसी गीत में चाची, मामी, भाभी, मासी इत्यादि को सम्बोधित करते हुए औरतें इस गीत को गातीं हैं।

गीत नं॰ 3 – घुंघर वाले बाल म्हारे होल्लर के....................।
म्हारे होल्लर की दादी भी जीवे,
जीवे रे परिवार म्हारे होल्लर का।
घुंघर वाले बाल म्हारे होल्लर के।
म्हारे होल्लर की अम्मा भी जीवे,
जीवे रे परिवार म्हारे होल्लर का।
घुंघर वाले बाल म्हारे होल्लर के।
म्हारे होल्लर ....।

इस प्रकार उपर्युक्त गीतों की तरह अन्य रिश्तेदारों को यथा. चाची, ताई, मामी, बुआ इत्यादि को सम्बोधित करके ये गाने गाए जाते हैं।

उपरलिखित तीनों गीतों में यह व्यक्त किया गया है कि लड़का पैदा होने पर उस परिवार में कैसी-कैसी खुशियां मनाई जाती हैं तथा किस-किस रिश्तेदार के नाम ले लेकर गीत गाये जाते हैं।

इसी प्रकार दशूट्ठन के अवसर पर गाये जाने वाले निम्नलिखित गीत जो कि पारम्परिक हैं गाये जाते हैं। ये गीत केवल लड़के के दशूट्ठन अर्थात् जन्म के दसवें दिन गाये जाते हैं। इस शुभ अवसर पर उस घर में पण्डितों (पुरोहितों) के द्वारा हवन करवाया जाता है। सारे घर को गाय के गोबर से लिपाई की जाती है तथा घर को शुद्ध किया जाता है। अपने-अपने सगे सम्बन्धियों को इस मौके पर आमान्त्रित किया जाता है तथा उन्हें अच्छा भोजन खिलाया जाता है। सभी लोग रिश्तेदार बच्चों को उपहारस्वरूप कपड़े व पैसे इत्यादि देकर उसके सुख की कामना करते हैं। इस समय औरतों द्वारा भिन्न—भिन्न गीत गाए जाते हैं :—

गीत नं० 1 मेरा है तनका मजाज मेरी नणदी।
मेरा है तनका मजाज मेरी नणदी ।।
चांदी के खेल खिलौणे म्हारे मत ल्याईयो।
म्हारे है सोने का रिवाज मेरी नणदी।
मेरा है तनका मजाज मेरी नणदी ।।
पीतल के खेल खिलौणे म्हारे मत ल्याईयो।
म्हारे है तांबे के रिवाज मेरी नणदी।
मेरा है तनका मजाज मेरी नणदी।
तांबे के खेल खिलौणे म्हारे मत ल्याईयो।
म्हारे है लकड़ी का रिवाज मेरी नणदी ।।
मेरा है तनका मजाज मेरी नणदी ।।

इस गीत का भावार्थ है :—कि जब यह गीत गाया जाता है तो लड़के की ओर से स्त्रिया उसकी बुआ को जो लड़के की मां की ननद लगती है, यह सम्बोधित करती हुई गीत गाती हैं कि नवजात शिशु के लिए बढ़िया किस्म के सोने चांदी इत्यादि के खिलौने लेकर आना।

गीत न० 2

कृष्ण चन्द्र की माए झूंजणा ले ले।
ले-ले यशोदा माए झूंजणा ले-ले ।।
यो रत्न झूंजणा तेरे बाबल घड़ावे।
अम्मा के मन मां चाव ए झूंजणा ले-लं।

ले-ले यशोदा माए झूंजणा ले-ले।
यो रत्न झूंजणा तेरे मामा घड़ावें।
मामी के दिल मां चाव ए झूंजणा ले ले।
ले-ले यशोदा माए झूंजणा ले-ले।
यो रत्न झूंजणा तेरी बुआ घड़ावे।
फूफा के मन मां चाव ए झूंजणा ले-ले।
ले-ले यशोदा माए झूंजणा ले-ले।

दाबड़ा :— दाबड़ा भी बच्चे के जन्म के उपलक्ष्य में मनाया जाता है। यह केवल लड़की के जन्म लेने पर ही मनाया जाता है। लड़की के जन्म के दस दिनों के भीतर बच्ची की मां को उसके मायके वाले दाबड़ा भेजते हैं। घी में आटा भूनकर, उसमें मेवे-मिष्ठान इत्यादि डाल कर स्वादिष्ट खाद्य पदार्थ बनाया जाता है उसी का नाम दाबड़ा है। यह सामग्री नवजात बच्ची की मां अर्थात् प्रसूता स्त्री के स्वास्थ्य के लिए दी जाती है। इस अवसर पर गाए जाने वाले कुछ गीत :—

गीत न० 1

सूंठ जवायण गले में अटके,
चाय का प्याला सटासट सटके।
सास का दिया हुआ गले में अटके,
मां का दिया हुआ सटासट सटके।
सूंठ जवायण गले में अटके,
चाय का प्याला सटासट सटके।
नणद का दिया हुआ गले में अटके,
बहन का दिया हुआ सटासट सटके।
सूंठ जवायण गले में अटके,
चाय का प्याला सटासट सटके।
जठाणी का दिया हुआ गले में अटके,
भाभी का दिया हुआ सटासट सटके।
सूंठ जवायण गले में अटके,
चाय का प्याला सटासट सटके॥

गीत न० 2

सूट बूट और लड्डू मेरे मायके से आए जी,
उसमें से एक लड्डू सास ने चुराया जी।
सास का तो हाथ पकड़ के कमरे में अन्दर कर दो जी,
कमरे अन्दर ना माने तो बाहर ताला ला दो जी।

ताले अन्दर ना माने तो बाहर पहरा ला दो जी।
सूट बूट और लड्डू मेरे मायके से आए जी।
उसमें से एक लड्डू नणद ने चुराया जी,
नणद का तो हाथ पकड़ के कमरे अन्दर कर दो जी।
कमरे अन्दर ना माने तो बाहर ताला ला दो जी।
ताले अन्दर ना माने तो बाहर पहरा ला दो जी।
सूट-बूट और लड्डू मेरे मायके से आए जी।
उसमें से एक लड्डू देवरानी ने चुराया जी,
देवरानी का तो हाथ पकड़ के कमरे अन्दर कर दो जी,
कमरे अन्दर ना माने तो बाहर पहरा ला दो जी।
सूट बूट और लड्डू मेरे माईके से आये जी।
उसमें से एक लड्डू जेठानी ने चुराया जी,
जेठानी का तो हाथ पकड़ के कमरे अन्दर कर दो जी,
कमरे अन्दर ना माने तो बाहर पहरा ला दो जी।
सूट-बूट और लड्डू मेरे मायके से आये जी इत्यादि।

सुहागगीत :—लड़की की शादी में गाये जाने वाले गीतों को सुहाग कहते हैं। शादी के प्रत्येक मुहूर्त पर अलग-अलग सुहाग गाये जाते हैं। इस प्रकार लग्न के समय जब अग्नि फेरे वर-वधू के होते हैं। उस समय का सुहाग इस प्रकार है :—

सुहाग न० १

अजी बाबल जी अजी बाबल जी,
हमारा बर आप ढूंढो जी, हमारा वर आप ढूंढो जी,।
सास हो जैसी माता जी,
ससुर हो दीन के दाता जी।
पति हो बाल ब्रह्मचारी जी,
जो राखे प्राण से प्यारी जी।
गड़ाओ केले के खम्बे जी,
दिलाओ वेद से फेरे जी।
अजी चाचा जी अजी चाचा जी,
हमारा वर आप ढूंढो जी।

इस प्रकार इस गीत से आगे अपने सगे सम्बन्धियों जैसे मामा, दादा इत्यादि का नाम लेकर गाया जाता है।

गीत नं० २

बन्नी के बाबल खड़े हथ जोड़ राम रथ रोक लियो।
लाड्डो जो मंगणा सो मांग राम रथ रोक लियो।।
मैं तो मांगू जी सास कौसल्या, ससुर राजा दशरथ जी।
वर मांगू मैं श्री भगवान, देवर छोटे लक्ष्मण जी।।
और मांगू अयोध्या जी का राज पलंग बैठ्ठी हुकम करु।
बन्नी के मामा खड़े हथ जोड़ राम रथ रोक लियो।
लाड्डो जो मंगणा सो मांग राम रथ रोक लियो।।
मैं तो मांगू जी सास कौसल्या, ससुर राजा दशरथ जी।
वर मांगू श्री भगवान, देवर छोटे लक्ष्मण जी।।
और मांगू आयोध्या जी का राज, पलंग बैठ्ठी हुकम करु।।

गीत नं० ३

प्रस्तुत गीत में सुन्दर वर्णन है। इसमें वधू अपने भावी पति के मिलन का आग्रह करती हैं :-

मैं तो उदास मेरे बन्ने से मिलवा दे री अम्मा।
मैं तो उदास मेरे बन्ने से मिलवा दे री अम्मा।।
अम्मा ना जाने री अम्मा, बाबल ना जाने री अम्मा।
तू ही तो जाने मुलाकात करवा दे री अम्मा।।
शीशे का बंगला होगा, जाली का पर्दा होगा।
जाली के पर्दे में से दो बातें करवा दे री अम्मा।।
ताई न जाने री अम्मा, चाची ना जाने री अम्मा।
तू ही तो जाने, मुलाकात करवा दे री अम्मा।
शीशे का बंगला होगा, जाली का पर्दा होगा।
जाली के पर्दे में से दो बातें करवा दे री अम्मा।।

शादी में लड़की की विदाई के समय गाये जाने वाले कुछ सुहाग गीत निम्न प्रकार से प्रस्तुत हैं। ये सुहाग उस समय गाये जाते हैं जब कन्या वधू बनकर सभी सम्बन्धियों को छोड़कर अपने ससुराल के घर रवाना होती है।

सुहाग गीत नं० 1

आजा ए लाडो, आजा ए बीबो,
अब साथ बिछुड़ने वाला है—अब साथ बिछुड़ने वाला है।
तेरा टीका तो हमने दे वी दीया,

अब बिन्दी बनने वाली है ।
अब बिंदी बनने वाली है ।
आजा ए लाडो, आजा ए बीबी ।
अब साथ बिछड़ने वाला है
अब साथ बिछड़ने वाला
तेरा तोड़ा तो हमने दे ही दिया,
अब कंठी बनने वाली है ।
अब कंठी बनने वाली है ।
आजा ए लाडो .... ।
अब साथ बिछड़ने वाला है ।
अब साथ बिछड़ने वाला है ।

सुहागगीत न० २

क्यूं ब्याही थी परदेस, हे लक्खी बाबल मेरे ।
क्यूं ब्याही थी परदेस, हे लक्खी बाबल मेरे ।।
हम तो जी बाबल चम्बे दी चिड़ियां ।
जिधर डावे उड़ जायें, हे लक्खी बाबल मेरे ।।
क्यूं ब्याही परदेश, हे लक्खी बावल मेरे ।।
जब मेरा डोला बागों में निकला ।
मालिण भी देख-देख रोये ।।
हे लक्खी बाबल मेरे क्यूं ब्याही परदेश, हे लक्खी बावल मेरे ।।
जब मेरी डोली कुंओं पे निकली
झिवरन वी देख-देख रोवे ।
हे लक्खी बाबल मेरे, क्यूं ब्याही परदेस, हे लक्खी बाबल मेरे ।
हम तो जी बाबल खुन्टे दी गऊआं ।
जिधर हांक्के हंक जायें, हे लक्खी बावल मेरे ।
क्यूं ब्याही परदेस हे बांके बावल मेरे ।।

घोड़ियां :— ये गीत भी विवाह से पूर्व या विवाह में ही गाए जाते हैं, परन्तु अन्तर इतना है कि सुहाग गीत लड़की के लिए और घोड़ियां लड़के (वर) के लिए गाई जाती हैं। लड़के की शादी की घोड़ियों के कुछ गीत इस प्रकार से हैं :—

घोड़ी गीत न० : 1

बन्ना आगे पीछे डोले पर बनरो न बोल्ले ।
बन्ना आगे पीछे डोले पर बनरो ना बोल्ले ।।

बन्ना टीका ल्याया प्रबन्ध करके ।
टीक्के के सुच्चे हिल्लें, पर बनरो ना बोले ।
बन्ना आगे पीछे डोले........... ।
बन्ना बाले ल्याया पसंद करके, बाले के मोती हिल्लो ।
पर बनरो न बोले ।
बन्ना पैंडल ल्याया प्रबन्ध करके ।
पैंडल के सुच्चे हिल्लो पर बनरो न बोले ॥
बन्ना आगे पीछे डोले............. ।
बन्ना घड़ियां ल्याया पसंद करके ।
घड़ियों की चाबी हिल्ले, पर बनरो न बोले ।
बन्ना आगे पीछे डोले पर बनरो न बोले ।

इस घोड़ी गीत में हास्य रस है जिसमें दुल्हा दुल्हन को भान्ति-भान्ति की वस्तुएं खरीद कर लाता है परन्तु दुल्हन फिर भी उसके साथ बोलती नहीं है और वह उसे मनाने में असमर्थ रहता है ।

घोड़ी गीत न० २

ये घोड़ी शान्त रस से भरपूर है :—

के बनरे बनजा कमल का फूल,
गुलागुलकंद बनूंगी मैं ।
के बनरे ले बाबल को साथ.
बन्नी को ब्याहण जाईयो रे ।
के बनरे जो तुमको पता नहीं होगा,
महल के अन्दर जाईयो रे ।
के बनरे सिर के खुल रहे केस,
हाथ में कंगना बन्ध रहा है ।
के बनरा बनजा कमल का फूल,
गुलागुलकंद बनूंगी मैं ।
के बनरे ले मामा को साथ,
बन्नी को ब्याहण जाईयो रे ।
के बनरे जे तुमको पता नहीं होगा,
महल के अन्दर जाईयो रे ।
के बनरे सिर के खुल रहे केस,
हाथ में कंगना बन्ध रहा है ॥

घोड़ो गीत न० ३ :— ये गीत वात्सल्य से पूर्ण है ।

बन्ना म्हारा खेले बागों में फुटबाल रे...बन्ना म्हारा खेले बागों में फुटबाल रे ।
बन्ना तेरी अम्मा बलावे घर आजा ।
आजा घर आजा दपैरे का टैम रे ।।
बन्ना तेरे बालों का तेल सुक्का जाए रे ।
बन्ना तेरा गोरा बदन कुम्हलाए रे ।।
बन्ना मारा खेले बागों में फुटबाल रे...बन्ना म्हारा खेले बागों में फुटबाल रे ।
बन्ना तेरी बाब्बो बलावे घर आजा ।
आजा घर आजा दपैरे का टैम रे ।
बन्ना तेरे बालों का तेल सुक्का जाए रे ।।
बन्ना तेरा गोरा बदन कुम्हलाए रे ।
बन्ना मारा खेले बागों में फुटबाल रे.. बन्ना म्हारा खेले बागों में फुटबाल रे ।
बन्ना तेरे बालों का तेल सुक्का जाए रे,
बन्ना तेरा गोरा वदन कुम्हलाए रे ।
बन्ना मारा खेले बागों में फुटबाल रे ।।

इस प्रकार विभिन्न अवसरों पर गाए गाने वाले गीत प्रस्तुत किए गए हैं । इन गीतों का उक्त क्षेत्र में विशेष महत्व है तथा विवाह शादियों व अन्य अवसर इस प्रकार के गीतों के बिना नीरस लगते हैं । पहाड़ी संस्कृति को बनाये रखने के लिए प्रकार के लोक गीतों का संरक्षण आवश्यक है ।

भाषा एवं संस्कृति विभाग, शिमला-1

कांगड़ा क्षेत्र

सामाजिक लोकगीत एक अनुशीलन

○मनोहर सागर पालमपुरी

हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा जनपद में आदिकाल से बसते आ रहे लोगों के संस्कारों, स्वभावों एवं चारित्रिक प्रवृतियों को झलकाते कई लोकगीत आज भी इस जनपद के सहतर और अस्सी वर्षीय ग्रामीणों के मस्तिष्कों की डायरियों में सुरक्षित हैं और उनके मुखारबिन्दों से सुने जा सकते हैं। ऐसे ही कुछ गीत मुझे कुछ बुजुर्ग ग्रामीणों से प्राप्त हुये हैं। जिनका सांस्कारिक और प्रासंगिक विवरण इस लेख द्वारा प्रस्तुत करने जा रहा हूं।

इन गीतों के सूक्ष्म अर्थांकन से उस समय के सामन्ती युग में भूख, बेरोजगारी और घोर निर्धनता का जीवन व्यतीत करते जनसाधारण की मान्यताओं और उस समय की क्रूरता से उपजित विश्वासों की एक तस्वीर पाठकों के सामने आयेगी, ऐसा मेरा विश्वास है। जिस काल के यह लोकगीत हैं, उस समय जनसाधारण भूमिहीन थे। भूमि के मालिक उन पर तरह-तरह के अत्याचार करते और उन्हें अपने गुलाम समझकर उनकी मेहनत का फल स्वयं भोगते थे। तत्कालीन युग में रोजगार के साधन उपलब्ध नहीं थे और राजमड़ाशाही के जुल्मों से तंग आकर और विवश होकर आम आदमी परदेशों में जाकर छोटी मोटी नौकरियां करने या फौज में भर्ती होकर अपने परिवारों से कई-कई वर्ष तक जुदा रह कर थोड़ा बहुत पैसा घरों को भेज पाते थे। ऐसी ही दुःखद परिस्थितियों की झलक इन लोक गीतों में मिलती है। यह लोकगीत बेशक पुराने है फिर भी इनकी प्रासंगिकता को नकारा नहीं जा सकता। आज भी यह गीत हमारी प्राचीन संस्कृति की बहुमूल्य धरोहर हैं।

आईए, कांगड़ा के जनमानस के जीवन से जुड़े इन गीतों की आत्मा में उतर कर इन का अर्थांकन और विश्लेषण करें।

१. सैनिक पत्नि का बिरहयुक्त गीत

लिखी लिखी चिट्ठियां मैं जर्मन भेजियां,

ओ बर्लिन छोड़ी घरें आयो जी,
ओ मेरेया दर्दीया, लामा छोड़ी घरें आयो जी।
लिखी लिखी चिट्ठियां में भेजां ओ ढोल्ला।
ओ दर्दीया, भैणां तेरीया दी सादड़ी, तुसां घरें आई जाणा।
धनें दीयां बोरियां मैं भेजां ओ जान्नीं,
करी देणां बोबो दा ब्याह,
मेरा तां जान्नीं, औण नीं होणां ऽ ऽ ॥
लिखी लिखी चिट्ठियां मैं भेजां ओ दर्दीया,
कि बब्ब तुआंदा ऐ बमार,
ओ, तुसां घरें आई जाणां-ऽ ऽ ॥
धनें दीयां बोरियां मैं भेजी दिन्नां जान्नी,
करि लैणां बापुए रा लाज,
मेरा ता जान्नी औण नी होणीं ऽ ऽ॥
आई जाणां घरें जरुर मेरे दर्दीया,
लाड़ी तां तेरी ऐ बमार—ऽ ऽ
धनें दीयां बोरियां मैं लई औणां जान्नी,
कराई लैंघा नाज्जो तेरा लाज,
छुट्टीया आई जांघा ऽ ऽ ऽ ॥

अंग्रेजों और जर्मनियों के युद्ध में फौजी जर्मनी की राजधानी बरलिन में मोर्चाबद्ध है और उसे लाम छोड़ कर घर चले आने का आह्वान उसकी पत्नी करती है। वह उत्तर में बहन के विवाह पर और पिता की बीमारी पर घर न आ सकने की विवशता प्रकट करता है । हां विवाह के लिये धन और पिता के उपचार के लिये भी खर्च भेजने की बात कहता है लेकिन जब पत्नी अपनी बीमारी का पत्र लिखती है तो तुरन्त उत्तर देता है कि धन लेकर आ रहा हूं और पत्नी का इलाज स्वयं करायेगा। इस प्रकार वह अपने पारिवारिक रिश्तों में पत्नी को प्राथमिकता देता है।

२. परदेश से पति के आगमन की कामना करती नवयौवना का गीत.

अंबुए री डाली जी, कोई कोयल बोलै
जी, अच्छा देह्यां सब्द सुणाई रह्यी ऐ।
ह्थैं तां लेयां गोरीय सुच्चीयां रा थालू,
चली ऐ पाधेआं जो पुछणां जी।
—सच्ची मलाणीं, ओ भाईयो पाधेयो,

जी कदीं घरैं औण गोरिया दे कन्ते ओ ऽ ऽ !
सच ई गलाणां मैणे झूठ नीं बोलणां
जी बाराहं तां बरहींयां न्हियांला ओ ऽ ऽ ॥
अग्ग तां लगायां तुहाड़ीयां पोत्थीयां, पावेयो,
तुसां पाणीएं लुकाए बेद ओ ॥ ऽ ऽ II

आम्रवृक्ष बौराए हुये हैं। कोयल लुभावने गीत गा रही है। नव विवाहिता गोरी सुच्चीयों (मैदे की तली रोटियों) का थाल सजाए ज्योतिषियों से जा कर पूछती है कि भाईयो ! सच सच कहो मेरे पति कब घर आएंगे। उसे आशा है कि पावें (ज्योतिषी) अवश्य उसके पति के शीघ्र आने की भविष्यबाणी करेंगे। लेकिन ज्योतिषी उस समय की परिस्थितियों से ही अनुमान लगा लेते हैं कि पति इतनी जल्दी घर नहीं आयेगा। इस लिये वह कह देते हैं कि उसे बारह वर्ष तक पीड़ादायक विरहानल में जलना होगा। वह पण्डितों को क्रोधवश कहती है —"तुम्हारी पोथियों में आग लगे तुम लोगों ने वेदों को भी जल में लुप्त कर रखा है।" इस लोक गीत में पति के कहीं परदेश में बंधवा मज़दूर होने की दशा बताई गई है।

३. मैयेके से बिछुड़ कर ससुराल जाती नौब्यहाता का गीत :

होरनी दे पत्तणैं, ओ इक बेड़ी पोंदी,
ओ, डाढे दे पत्तणें कोई दो बेड़ियां।
भला ओ मलाहिया ! ओ पैहलड़े पूर लंघायां ओ ऽ ऽ I
घरैं अम्मां भी छुट्टी, ओ बापू भी छुट्टे,
अजी, भाईयां दियां छुट्टीयां, दो जोड़ीयां।
भला ओ मलाहिया.................. ऽ ऽ
भाई बी छोड़े भरजाईयां बी छोड़ियां
ओ, भतीजीयां रीयां छोड़ियां दो जोड़ीयां ओ, ऽ ऽ।
ओ डाढ़े दे पत्तणौं दो बेड़ीयां ऽ ऽ-।।

तत्कालीन रियासत डाडा सीबा के एक गांव से कोई गोरी विवाहोपरान्त अपने सगे संबंधियों और अपने परिवेश से बिछुड़ने की व्यथा का दर्द अपने कोमल मन में संजोये, ब्यास नदी के उस पार अपने ससुराल के गांव जाने के लिये इसलिये उतावली हो उठी है कि पत्तण पर प्रतीक्षा की पीड़ा से मुक्त होकर वह नये परिवेश में प्रत्याशित स्वागत में अपना दुःख भुला सके। वह मांझी से कहती है कि डाढ़े के पत्तण पर दो नाव हैं इसलिये हे मांझी ! तू मुझे पहली ही खेप में उस पार पहुंचा दे ताकि में अपने सगों के बिछोह में इस पार देर तक डोलते रहने की पीड़ा से मुक्त

हो सकूं ।

४. सास और ननद द्वारा संतापित बहू का गीत

भरीयो मजाजण, पत्थर मजाजे दी भरियो,
चढ़ी ओ चुबारें जाई सुत्ती ओ——ऽऽ I
मुठ की छितेयां खौन्दे हत्थे चलाईयां,
जी चढ़ी ओ चुबारें चली जान्दा ओ ! ऽ ऽ।।
इक तां छिटी खौन्दें गोरीया जो लाई
सुत्तीया जो जागना आई ओ——ऽ ऽ I
दूई तां छिटी खौन्दे जाग्दीया जो लाई
जोरें जोरें गोरी रड़ाई ओ—ऽ ऽ ।।
—मरी तां जायां ननान्नें जणद खाणीयें,
तैं मूईया जो मार दुआई ओ—- ऽ ऽ ।
चनण कटाया खौंदें चिरण जे चिणाई
गोरीया जो दाग दुआया ओ - —ऽ ऽ ।।
चिटे तां कपड़े खौंन्दे भागुएं कीत्ते जी,
जोगीयां रा भेस बणाया ओ ऽ ऽ ।।

सास द्वारा अकारण ही परिताड़ित स्वाभिमानिनी बहु सास तथा ननद के निष्ठुर व्यवहार से पाषाण सी हुई चौबारे पर जाकर सो गई है। उसे आशा है कि उसका एकमात्र अवलंबन, उसका पति घर आएगा और उसे चौबारे पर आ कर ढूंढेगा। फिर पूछेगा कि उसकी उदासी और रोष का क्या कारण है। फिर कारण जानकर उसे ढाढस बंधाएगा और अपनी माता और बहन को बहू के प्रति क्रूर व्यवहार के लिये उन्हें दोषी ठहरायेगा। लेकिन दिन भर की चिन्ताओं से थके हारे पति को उसकी मां और बहन बहू के विरुद्ध उल्टे भड़काती हैं। वह बेचारा अपना विवेक खोकर क्रोधित अवस्था में छड़ियों की मूठ लेकर चौबारे पर जा कर उसे मारता है। पति से भी अकारण पिट जाने पर बहू को पति के अन्यायपूर्ण व्यवहार से गहरा मानसिक आघात पहुंचता है, उसका मनोबल टूट जाता है और बहू क्रोध से फट पड़ती है -'हे अपनी जननी को खाने वाली क्रूर ननद, तूने मुझ मरी हुई को मरवाया है। "इसी आघात से बहू आत्महत्या कर लेती है। तब पति को अपनी गलती का अनुभव होता है और वह इसी प्रायश्चित में बैरागी हो घर बार त्याग देता है। इस गीत में निहित भावों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय की नारी कितनी असहाय थी।

५. पत्नि के चरित्र पर पति द्वारा संदेह व्यक्त करता गीत :—

घरें औंदा जे पुत्र माऊ जो पुछदा --
पंजलड़ी माला इहजो किन्नीं दित्ती ऐ ?
सच जे गलाणां पुत्रा,
कल मरी जाणा-कल मरी जाणा,
ओ पंजलड़ी माला इहजो पियोकियां दित्ती ऐ।
घरें औंदा जुआई सस्सू जो रो पुछदा,
ओ पंजलड़ी माला इहजो किन्नीं दित्ती ऐ ?
सच जे गलाणां, पुत्रा,
कल मरी जाणा, कल मरी जाणा
पंजलड़ी माला इहजो भाऊआ दित्ती ऐ।

इस गीत में परदेश से घर आया पति अपनी सुन्दर पत्नि के गले में पांच लड़ियों की माला देखकर मां से संदेहजनक भाव में पूछता है कि यह माला उसे कहां से प्राप्त हुई है तो मां उसके प्रश्न का आशय समझ कर उसकी शंका यह कह कर समाधान करती है कि वह माला उसे अपने मातापिता से प्राप्त हुई है। ऐसा ही संदेह देर से ससुराल में आया पति अपनी सास से ऐसा ही प्रश्न करके व्यक्त करता है और अपनी शंका का समाधान पाता है। इस गीत से पता चलता है कि उन दिनों नारी के श्रृंगार पर भी सन्देह किया जाता था। उस ज़माने की औरतों को कितनी घुटन में जीना पड़ता था।

६. सामन्ती युग की घटनाओं पर आधारित गीतः—

भरीयां बंदूकां राजे,
चमके पलीते,
हेड़े जो जाणा जरुर राजा जी ऽऽ।
मारनी थी हिरणी राजें,
मारी रख्खी गऊआ, मारी रख्खी गऊआ,
ओ, गाई री हत्या तां नीं जान्दी राजा जी ऽऽ।
गंगाजी न्हौयां राजा,
जमुनाजी न्हौयां, जमुनाजी न्हौयां,
गाई री हत्या चली जाणी राजा जी ऽऽ।
गंगाजी न्हौता राजा,
जमुनांजी बी न्हौता, जमुनांजी बी न्हौता,
गाई री हत्या नी गई ऐ राजा जी ऽऽ।

चनणें री चौकी राजा,
रूपे रा गड़वा ओ,
अंगणें न्हौण दुआया जी ।
बूट त्यागे राजे पैह्नीयां खड़ौआं,
जी पैह्नीयां खड़ौआं,
करी लेया साधुआं रा भेस राजें जी ऽऽ ।
अतरां फुलेलां छोड़ी
मली ऐ भबूता,
करी लेया जोगीयां
रा भेस राजे जी ऽऽ ।
साधु बणीं ने राजा,
दख्खण बी हृण्डेया जी
पच्छम बी हृण्डेया,
मैणां रे देस मत जांदा राजा जी ऽऽ ।
साधुरा रे भेसे राजा गया इक्की मैहलैं,
भिछेया री अलख जगाई राजे जी ऽऽ ।
सुच्चेयां ता मोतीयां रा थाल जे भरेया राणीएँ,
लेयो जोगी भिछेया लेयो बाबा जी ओ ।
सुच्चेयां तां मोतीयां बीबीरा घरैं रख अपणें,
आटे दा घुटका इक लैणां मैण जी, ।
कुन्नीं तां भाईया तिज्जो मंदड़ा से बोलेया,
कुन्नी दित्ती ऐ मंदड़ी गाल् भाईया जी ऽऽ ।
चिटे तां कपड़े कैहे भागुंए कीते,
कैहं साधुआ रा भेस बणांया भाईया जी ?
हेडे जो चढ़िया मैणे बणां जे गेया,
जी बणें जो था गेया ऽऽ ।
मारनीं थी हिरणी मैणां ।
मारी रख्खी गऊआ,
ओ गाई री हत्या नी एं गई मैणां जी ऽऽ ।
गंगा जी भी न्होतां मैणां,
जमुनां जी बी न्होतां, ओ गाई री हत्या नी रों गई मैणा जी
उच्चीया चढ़ी मैणां छाल जे दित्ती,
ओ छाल जे दित्तीओ,
अपनी जान गुआई राजा जी ऽऽ ।

चनण कटाया राजें,
चिखा जे चिणाई, ओ चिखा जे चिणाई,
भैंणां जो दाग दुआया राजा जी ऽऽ ।
सिकड़आं जोड़ी राजैं धूणीं जी रमाई,
करी लेया जंगलीं डेरा राजा जी ऽऽ ॥

उपरोक्त लंबें गीत में सामन्ती युग की एक दु:खद घटना का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार दिया गया है :—

शिकार के आयुधों से लैस होकर कोई राजा दल बल सहित शिकार खेलने के लिये बनों को जाता है। जंगल में चरती हुई गाय को उसका तीर लगता है और वह मर जाती है हालांकि राजा तीर हिरणी को मारता है। राजा गो हत्या के कलंक से मुक्त होने के लिये गंगा जी और जमुना जी में स्नान एवं अनुष्ठान भी करता है लेकिन गोहत्या के सन्ताप से मुक्त नहीं हो पाता। संसार से विरक्त हो कर राजा चन्दन की चौकी पर बैठे चान्दी के लोटे से स्नान कर के, सूट-बूट, इतर फुलेल त्याग कर, भस्म रमा कर साधु बन भिक्षाटन के लिये निकलता है। राजा की अंतरात्मा उसे सुझाती है कि वह भिक्षु बन कर कहीं अपनी बहन के द्वार पर अलख न जगाये। लेकिन होनी उसे बहन के द्वार पर ही ले जाती है। उधर बहन, जो एक राज्य की रानी है द्वार पर अपने भाई को भिक्षा के लिए आया देख कर शोकाकुल हो मोतियों का थाल भिक्षा के रूप में देना चाहती है लेकिन राजा तो जोगी हो चुका है केवल एक चुटकी आटे का आकांक्षी है। भाई से उसके इस तरह राज पाट त्याग कर साधु हो जाने का कारण पूछने पर जब उसे राजा के गोहत्या के कलंक के कारण घर बार छोड़ दर-दर भटकने का पता चलता है। तो वह अपने मायके के उजड़ने के दुख में आत्महत्या कर लेती है। राजा बहन का दाह संस्कार कर के जंगलों को प्रायश्चितार्थ निकल जाता है। इस गीत से पता चलता है कि अतीत में ऐसी घटना अवश्य घटी होगी।

७. राजा भरतरी से संबंधित लोक गीत :—

निम्नलिखित गीत भी राजा भरतरी के काल में हुई घटना का विवरण लिये हुये हैं :—
बारहां बरहीयां राजें भरथरीएं,
सत्त कीत्तो ब्याह।
इक जे ब्याही राजें सौहल्ली राणी,
दूजी ओ ब्याही प्युंगल नार ओ ऽऽ ।
पटराणी जी ऐ क्या गलांदी,
सुण राजेया मेरी बात,
कदें नी राजा गेया हेड़े जो,

कदें नी गेया शिकार ऽऽ ।
हाकां पईयां चौबदारां जो
करने यों लीला त्यार ।
बन्ही लैणां मेयो बिश्तरा,
बारांह कोहां दी ऐ जुआड़ ।
सुकीयां तलाईयां हरीयां जी होईयां ।
हिरणुं पाणी पीणां आए ऽऽ ।
पैंहला जे तीर राजैं मारेया, हिरणीएं लेया खुन्जाई,
दूजा तीर जे मारेया, हिरणीएं सैंह बी लेया खुन्जाई ।
हथां जोड़ी ने हिरणीं क्या गलांन्दी ऐ,
सुणों राजा जी हमारी बात,
जैसा फिरे हिरणी, वैसी फिरै प्यूंगल नार ।
तीजा तीर बी राजैं मारेया,
हिरणीएं सैंह बी लेया खुन्जाई ।
चौथा तीर राजैं मारेया जी,
जहेड़ा होया हिरणें रैं आर पार ।
तड़फी तड़फी हिरण क्या गलान्दा ऐ
जी राजा, सुणों हमारी बात ।
जींदे तां हिरणें रा इक लख्ख मुल्ल ऐ जी,
मरेयो दे लख्खां हजार ।
मासां देयां लालचीय मास मेरा वण्डेयां,
जिन्हा खेडेया ऐ हेड़ा राजा जी ऽऽ ।
सिरे देयां सिंगां उन्हां जोगीयां जो देयाँ,
जिन्हां बजणें हुण जी नाद ।
हड्डुआं देयां तिन्हां जातकां,
जिन्हां गले बिच पाणे मढ़ाई ओ ।
खलड़ुआं देयां तिन्हां साधुआं,
जेहड़े स्माधिया बिच हेठ बछाण,
नैणां देयां तिन्हां राणीयां,
जिन्हां कढ़णे ओ छैल रमाल ।

यह गीत भी एक शिकार की घटना को ब्यान करता है। राजा भरतरी के सात रानियां थीं। पटरानी सोहली अर्थात नाजुक (कोमल) थी, दूसरी रानी प्युंगल अर्थात चंचल थी बिल्कुल

हिरणी सी। होनी यूं होती है कि राजा को पटरानी शिकार पर जाने के लिये उत्प्रेरित करती है। राजा अपने नीले घोड़े पर दल बल सहित बीहड़ों में आखेट हेतु निकल पड़ता है। राजा भर्तृ के आगमन पर सूखे तालाबों में जल भर जाता है जहां हिरणों का गौल पानी पीने के लिये आता है।

राजा पहले तीन तीर एक चंचल हिरणी पर चलाता है। हिरणी वार बचा कर राजा से अनुनय करती है कि "हे राजा। मैं तेरी प्यूंगल नार की भान्ति ही स्वच्छन्द विचर रही हूं। तू मुझे क्यों मारता है।" राजा का चौथा तीर जब एक हिरण के जिस्म के आर-पार निकल जाता है तो मरणासन्न हिरण परस्वार्थ की भावना से प्रेरित हो राजा से अनुरोध करता है कि हे राजन ! जीता हिरण लाख रूपये का है और मरा हुआ हजार लाख का। तुम मेरे शरीर का मांस तो उन हेड़ा खेलने वाले मांस के लालचियों में बांट देना जो मेरी मृत्यु का कारण बने हैं। मेरे सिर के सींग उन जोगियों को देना जो इनके वाद्ययंत्र बना कर बजाएंगे। मेरी हड्डियां नवजात शिशुओं को ग्रहों की शान्ति के लिये गले में मढ़ा कर डालने के लिए दे देना। मेरी खाल साधुओं को समाधि में आसन के रूप में बिछाने के लिए दे देना और मेरे नेत्र उन रानियों को दे देना जो उन से पैनी दृष्टि पाकर सुन्दर रूमाल काढ़ेंगी। इस गीत में मरणासन्न हिरण के परोपकारी संस्कारों की झलक मिलती है।

८. सांसारिक रिश्ते-नातों की व्याख्या करता लोकगीत

हरीयां भरीयां, सब्ज़ खजूरां,
ओ, पत, जिन्हां दे पील्ले वे।
जिन्हां माऊं दे पुत्तर परदेसी,
तिन्हां माऊं दे कुण हीले वे।
माता कहे पुत्तर मेरा ओ मेरा,
भैण कहे मेरा भाई वे।
नार कहे मेरा कन्त ऐ मेरा,
दून्नों री जोड़ी बन्हाई वे।
जन्म जन्म, तेरी माता रोए,
भैण रोये दसमाही वे,
दस ओ ध्याड़े तेरी नार जे रोये,
फेर करे घरबारी वे।
टुटी वे चादर भई पराणी,
किस बिध सीवे दरजी वे,
दिले दा मैहरम कोई नीं मिला,
जे मिल्ला अलगरजी वे।

नानक चादर भोऐं पराणी,
सन्त जे मिल्ले दरजी वे,
दिले रे मैहरम प्रभू जी मिल्ले,
जो बी करण खुद मरजी वे ।।

ऊपर दिया गीत इस संसार की नश्वरता और मिथ्या मोह माया की ओर इंगित करता है। इस गीत के भाव यूं हैं :—

हरी भरी सब्ज खजूरे मोह रूपी हरियाली की प्रतीक हैं। पीले पत्ते व्यथा भरे एकाकीपन के प्रतीक हैं। इस वातावरण में उन माताओं का कौन सहारा है जिनके पुत्र परदेशी हो गये हैं। चूंकि परदेसी पुत्र की कमाई पर ही पूरा परिवार निर्भर रहता है इसलिए मां कहती है पुत्र मेरा है। बहन कहती है भाई मेरा है और पत्नि उसपर अपना अधिकार अलग से जतलाती है। लेकिन पुत्र जिस की अचानक मृत्यु हो जाती है, को क्या मालूम है कि जिस जननी ने उसे इतने कष्ट सहन करके पैदा किया है, पाला पोसा और जीविकोपार्जन के योग्य बनाया है, उस के अभाव में आयु पर्यन्त विलाप करती रहेगी। उसकी बहन दस मास तक शोकाकुल रहेगी और पत्नी तो केवल दस दिनों तक रो पीट कर किसी और के घर बैठ जायेगी। गीतकार अन्त में कहता है कि यह शरीररूपी चादर टूट चुकी है, जिसकी कोई दर्जी मुरम्मत नहीं कर सकता। इस संसार में ईश्वर के सिवाय कोई भी सच्चा मीत नहीं मिलता। ईश्वर की मरजी ही सर्वोपरि है।

इस लेख के प्रबुद्ध पाठकों से मुझे आशा है कि वे इस संकलन और गीतों के अर्थांकन में आई त्रुटियों के लिये मुझे क्षमा कर के मेरा पथ प्रदर्शन करेंगे। हां नई पीढ़ी के शोधकर्ताओं से अनुरोध है कि वे ऐसे लोकगीतों को खोज निकालें ताकि हमारी इस अलिखित सांस्कृतिक धरोहर का संकलन एवं संवर्धन हो सके।

अशोक लॉज,
मारण्डा, हि० प्र०
176102

शिमला क्षेत्र

पेंट रूफ शैली का वान्दरा मन्दिर

O हाकम शर्मा

शिमला जिला की रोहड़ू तहसील के गांव बंच्छूछ नामक स्थान पर "पेन्ट रुफ" शैली का एक बहुत ही कलात्मक मन्दिर स्थित है, जिसमें काष्ठ कला का कार्य बहुत ही निपुणता से किया गया है। वैसे हिमाचल प्रदेश में अनेक मन्दिर ऐसे हैं जो अपने प्राचीन इतिहास, संस्कृति, कला व सौंदर्य की दृष्टि से प्रसिद्ध हैं।

लेकिन यह वान्दरा देवता का मन्दिर लकड़ी व पत्थर से बड़े कलात्मक ढंग से बनाया गया है और इसकी मान्यता दूर-दूर तक फैली हुई है। लोगों की यह धारणा है कि सराहन "बुशैहर" का राजा कभी इस क्षेत्र में शिकार खेलने आया। उस समय इस स्थान पर एक लघु मन्दिर स्थित था। जिसे राजा ने शिकार खेलते समय नष्ट कर दिया और राजा शिकार खेलकर अपने महल में वापिस चला गया। अपने महल में पहुंचते ही राजा के पेट में बहुत जोर का दर्द हुआ। बहुत इलाज कराने के उपरान्त भी दर्द से कोई राहत नहीं मिली। कहा जाता है कि एक लामा जो अनेक बिमारियों का इलाज किया करता था तथा तन्त्र विद्या का भी ज्ञाता था उसने राजा को बताया कि राजा पर जो देवी प्रकोप है उसका कारण राजा द्वारा कभी मन्दिर का नष्ट किया जाना रहा है। अतः यह सुझाव दिया कि यदि राजा उस स्थान पर नये मन्दिर का निर्माण करेगा तो उसके ग्रह और सभी प्रकोप टल जायेंगे।

तत्पश्चात् राजा ने मण्डी रियासत से कारीगर बुलाया और सराहन के मन्दिर से एक विशेष प्रकार का पत्थर जिसका रंग हरा है लेकर इस स्थान पर मन्दिर का निर्माण करवाया। जब मन्दिर का निर्माण कार्य पूरा हो गया तो लोगों ने मन्दिर बनाने वाले कारीगर को मारने का प्रयत्न किया ताकि यह कारीगर इसी प्रकार का मन्दिर कहीं और न बना सके। कारीगर ने अपने बचाव के लिए मन्दिर की छत से छलांग लगाई। मन्दिर के प्रांगन में जहां उसके पांव पड़े उसके निशान अभी भी सुरक्षित इस गांव के बंच्छूछ में देखे जा सकते हैं।

इस स्थान पर कभी घंना जंगल हुआ करता था। मन्दिर के बीच में एक देवदार का पेड़ है जो मन्दिर की छत तक है तथा मन्दिर का कलश उस पेड़ पर टिका हुआ है। इस मन्दिर के परिसर के साथ ही कुछ लघु मन्दिर स्थित हैं। स्थानीय लोगों के अनुसार ये मन्दिर पाण्डवों के समय के हैं।

इन लघु मन्दिरों में शिव, पार्वती, गणेश, महिषासुर मर्दिनी, विष्णु अन्य लघु व विशाल लगभग ४० पत्थर की मूर्तियां विद्यमान हैं।

गणेश : गुप्तकाल से पूर्व ब्राह्मण देवतागण में गणेश का कोई स्थान नहीं था। पांचवी व छठी शताब्दी के पश्चात् गणपति की पूजा भारतीय समाज में आरम्भ हुई। इस चतुर्भुजी गणेश की पाषाण प्रतिमा में गणेश को चौकी पर बैठा दिखाया गया है। गले में सर्प का जनेऊ है। लम्बी सूंड जो छाती तक बनी है निम्न भाग से दाहिनी ओर मुड़ी हुई है।

पार्वती : दुर्गा की प्रतिमाएं अधिकतर राक्षसों का विनाश करती प्रदर्शित की गई हैं। पाषाण की इस प्रतिमा में चतुर्भुजी देवी पार्वती को कमलासन पर खड़ी मुद्रा में दर्शाया गया है। नीचे बाईं ओर सिंह की आकृति दीख पड़ती है और दाहिनी ओर नन्दी बैल की आकृति है, जिससे इस मूर्ति को पार्वती व दुर्गा मूर्ति दोनों का मिश्रण कहा जाये तो अतिशयोक्ति न होगी। प्रतिमा विभिन्न आभूषणों से सुसज्जित है। सिर के पीछे प्रभामण्डल बना हुआ है। के प्रतिमा के ऊपर बाईं ओर गणेश आकृति दृष्टि गोचर होती है। अतः मूर्ति नन्दी व गणेश के पाये जाने से देवी पार्वती के अधिक समीप प्रतीत होती है।

विष्णु : ब्राह्मण प्रतिमाओं में विष्णु को महत्वपूर्ण स्थान मिला जो वैदिक युग से आज तक समाज में श्रद्धा एवं भक्ति सहित पूजित होते हैं। इस पाषाण प्रतिमा में विष्णु की चार भुजाएं दर्शाई गई हैं। इस चतुर्भुजी स्वरुप में चार हाथों की कल्पना चार उपमाओं अथवा मनुष्य के चार पुरुषार्थ से ली गई थी। चार हाथों में शंख, चक्र, गदा और पद्म दृष्टिगोचर होते हैं। विष्णु प्रतिमा वैजन्तीमाला, किरीट-मुकुट व अनेक आभूषणों से सुसज्जित है। सिर के पीछे प्रभामण्डल बना है. नीचे दो मानव आकृतियां बनी हैं।

इसी तरह महिषासुरमर्दिनी, लकड़ी पर की गई नक्काशी तथा पत्थर पर बने बरसिल्ले व गन्धर्व आकृतियां तथा मूर्तिया कला की दृष्टि से बहुत ही प्राचीन दिखाई पड़ती हैं। प्रत्येक कला प्रेमी इन्हें देखकर मुग्ध हो जाता है।

इस मन्दिर में भी निरमण्ड के मुण्डा उत्सव की भान्ति बारह वर्ष बाद मुण्डा नामक मेला

लगता है। जिसमें प्राचीन समय में नर बलि की प्रथा प्रचलित थी, लेकिन अब सरकार द्वारा यह प्रथा समाप्त कर दी गई है। अब इस उत्सव में केवल बकरे की बलि का ही प्रचलन है।

भाषा एवं संस्कृति विभाग,
त्रिशूल भवन, शिमला-171003

वान्दरा देवता का मन्दिर बंच्छूछ

चम्बा रुमाल—(अष्टनायिका)
विवरण के लिए देखिये—पृष्ठ 37 पर श्री हरिश्चन्द्र राय का लेख "चम्बारुमाल"
छाया—श्री सुरेन्द्र मोहन सेठी

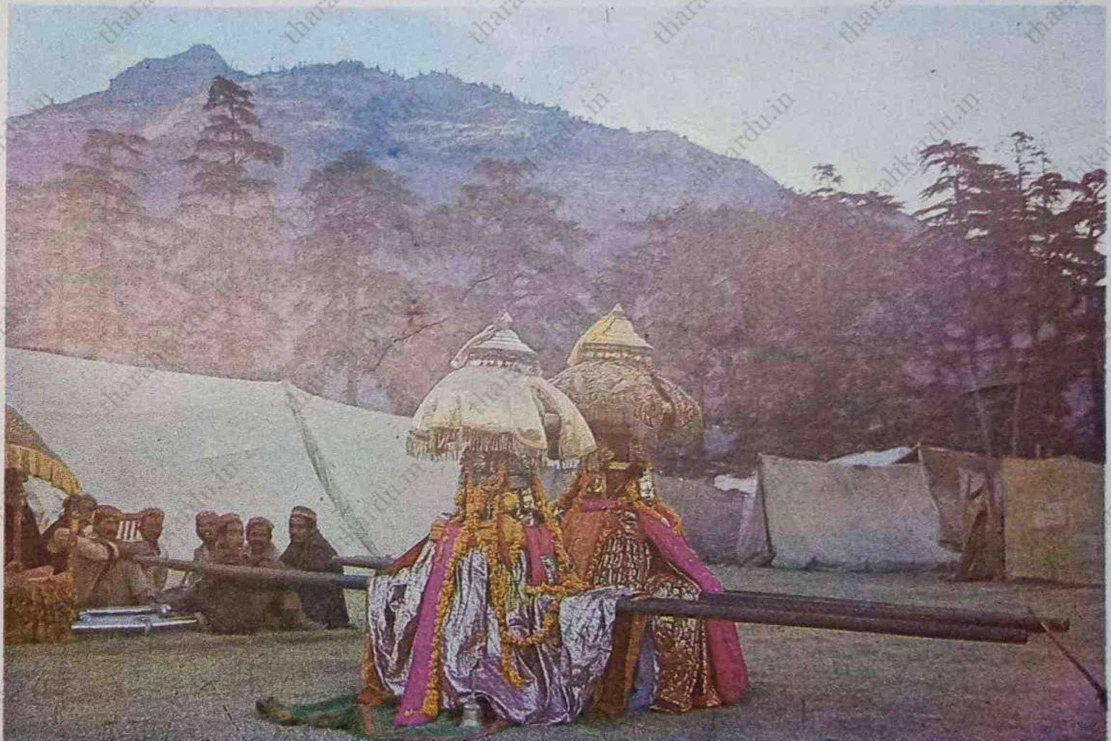

कुल्लू दशहरा में दो ग्राम देवता

tharahkardu.in

H.A.A.C.L

पंजी 28271/75

भेड़ पालक

Printed at :
New Printers, Green Field Cottage, Near Ice Skating Rink, Shimla. Ph : 6660